शोधादर्श

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीथकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस संदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५३

वीर निर्वाण संवत् २५३० जुलाई २००४ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण–कीर्तन : श्री तारण स्वामी	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	स्वस्तिक	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	६
३.	सम्पादकीय : भगवान महावीर का संघ परिवार	श्री अजित प्रसाद जैन	६
४.	जैन वाङ्मय एवं कला के संदर्भ में मांगलिक प्रतीक 'श्रीवत्स'	डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव	११
५.	कर्मादान की प्रासंगिकता	डॉ. रज्जन कुमार	१७
६.	सण्णा : मूलवृत्तियों की जैन अवधारणा	डॉ. ऋषभचन्द्र जैन	२०
७.	संस्कृत चम्पू काव्य परम्परा में पुरुदेव चम्पू का वैशिष्ट्य	कु. रेखा जैन	२८
८.	इतिहास बनता जैन इतिहास	इंजी. नीलम कान्त जैन	३१
९.	जैन श्रमणाचार में प्रतिक्रमण का स्थान	कु. स्वयंप्रभा पि. पाटील	३४
१०.	समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो	श्री अजित प्रसाद जैन	४०
११.	चिन्तन कण :		
	'अरिहंत' में भाव हिंसा,		
	श्रीवत्स तथा आयागपट्ट	डॉ. शशि कान्त	४२
	मनुष्य गति में नरकों की अनुभूति	श्री सुखमाल चन्द जैन	४४
	जैन धर्म–दर्शन का संदेश	साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	४५
	कुछ कहिए, कुछ सुनिए	डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी	४६

१२. स्वास्थ्य चर्चा : उच्च रक्तचाप से कैसे बचें		४६
१३. निसर्गोपचार अष्टक	श्री मनोहर मारवडकर	५०
१४. आगम चक्षु हैं	आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज	५१
१५. चेतन आत्मा का जीर्णोद्धार करें	आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज	५१
१६. जग–जीवन कितना नश्वर है	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया	५२
१७. आत्म निवेदन	डॉ गणेशदत्त सारस्वत	५३
१८. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	५४
१९. ब्रह्मचारी आदर्श त्यागी बनें	आचार्य श्री विद्यासागरमहाराज	५५
२०. श्रुत पंचमी पर्व और पुस्तकालय स्थापना दिवस		५६
२१. ज्योति अमर है	श्री अंशु जैन 'अमर'	५७
२२. स्वयं आत्म–पथ अपना पाना होगा	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	५८
२३. साहित्य सत्कार : मुम्बईवासी मध्य भारत के दिगम्बर जैन; All India Jain Temples and Tourist Places; भक्तिसंगीत समयसार; अन्तर्द्वन्द; स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास	श्री अजित प्रसाद जैन	५९
स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड); प्रारम्भिक नय प्रवेशिका; प्रारम्भिक प्राकृत प्रवेशिका; तपोनिधि; हवा कुछ और कहती है; भावना के सुमन; हर हर गंगे।	श्री रमा कान्त जैन	६२
२४. समाचार विमर्श :	श्री अजित प्रसाद जैन	
युग प्रधान अब महात्मा		६६
मंगलं भगवदो वीरो		६६
त्रिकाल चौबीसी मन्दिर		६८
पार्श्व ज्योति का घूमता आईना		७०
२५. पन्द्रह अगस्त	श्री रमा कान्त जैन	७१
२६. मेरी अन्तिम अभिलाषा	श्री अजित प्रसाद जैन	७४
२७. समाचार विविधा		७५
२८. अभिनन्दन		७६
२९. शोक संवेदन		७८
३०. आभार		७८
३१. पाठकों के पत्र		७९

श्री तारण स्वामी

सोलहवीं सदी में हुए, सद्गुरु तारण संत।
शुद्ध अध्यात्म की देशना, चला यह तारण पंथ।।
जाति पांति का भेद तज, किया धर्म प्रचार।
ज्ञानानंद स्वभाव से, मच रही जय जयकार।।
निज स्वरूप को भूला चेतन, काल अनादि भटक रहा।
चारों गति के चक्कर खाता, मोह राग में लटक रहा।।
सद्गुरु तारण स्वामी जग को, दिया यही महामंत्र है।
आतम शुद्धातम पहिचानो, यही तो तारण पंथ है।।

कमल बत्तीसी की अपनी **अध्यात्म कमल टीका** के उपरान्त दी गई **आध्यात्मिक जयमाल** में स्वामी ज्ञानानंद महाराज ने उपर्युक्त पद्यों में जिन गुरु तारण स्वामी का भक्तिगान किया है, उनका जन्म विक्रम संवत् १५०५ (१४४८ ई.) की अगहन शुक्ल सप्तमी को बुन्देलखण्ड में, वर्तमान मध्यप्रदेश के जबलपुर जनपद में कटनी नगर से १४ कि.मी. दूर पुष्पावती (वर्तमान बिलहरी) नामक स्थान पर हुआ था। उनका परिवार दिगम्बर आम्नाय का जैन धर्मानुयायी था। कहते हैं कि उनके पूर्वज सिद्धसेन इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में रहते थे। सन् १३६८ ई. में दिल्ली पर हुए तैमूरलंग के आक्रमण से उत्पन्न अराजकता की स्थिति में सुरक्षा की दृष्टि से सिद्धसेन अपना परिवार लेकर पुष्पावती आकर बस गये थे। यह भी कहा जाता है कि तारण स्वामी के पिता गढ़ासाह (गढ़ासाव) दिल्ली सुल्तान बहलोल लोदी (१४५०-१४८६ ई.), जिसका राज्य बुन्देलखण्ड तक था, के अधीन एक उच्च पदाधिकारी रहे और कदाचित् गढ़ासाह उनका नाम न होकर उनकी पदवी थी। तारण स्वामी की माता का नाम वीरश्री देवी था। जब तारण स्वामी पाँच वर्ष के बालक ही थे किन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उनके पिता को पुष्पावती तुरन्त छोड़नी पड़ी और वह अपना परिवार लेकर टोंक राज्यान्तर्गत ग्राम सेमरखेड़ी (विदिशा जनपद में सिरोंज कस्बे के निकट), जहाँ वीरश्री देवी के भाई लक्ष्मण सिंघई रहते थे, रहने आ गये और वहाँ व्यापार करने लगे। तारण स्वामी की शिक्षा का श्रीगणेश वहीं हुआ। बाल्यावस्था से ही कुशाग्रबुद्धि तारण स्वामी सामान्य विद्याध्ययन के साथ जैन शास्त्रों

का भी अध्ययन करने लगे और आत्म चिन्तन में निमग्न रहने लगे। ग्यारह वर्ष की अल्प वय में ही उन्हें वैराग्य भाव उत्पन्न होने लगे। इक्कीस वर्ष की किशोरावस्था में उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत तथा तीस वर्ष की आयु में सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा की दीक्षा ग्रहण की और वह सेमरखेड़ी के वियाबान जंगल में साधना में लीन रहने लगे।

छठी शताब्दी ईस्वी में मध्य एशिया के अरब देश में पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब (५७०ई.-६२२ई.) द्वारा प्रवर्तित इस्लाम नामक एक नया धर्म उदय में आया जो बुत शिकन (मूर्तिभंजक) था। हज़रत मुहम्मद ने अपने अनुयायियों को इस्लाम और उसके धर्म ग्रन्थ कुरान में विश्वास न रखने वाले काफ़िरों पर कोई दया न करने का निर्देश दिया। उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक तीनों सत्ताओं को संयुक्त करके अपने धर्म-राज्य की स्थापना की। उनकी मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही, ६४४ ई. में, मकरान और बिलोचिस्तान के मार्ग से अरबों ने भारत के सिन्धु प्रदेश पर सर्वप्रथम आक्रमण किया। तदनन्तर मध्य एशिया और काबुल से इस्लाम मतानुयायी आक्रान्ताओं के समय-समय पर भारत पर आक्रमण होते रहे और आक्रान्ता यहाँ का जन-धन लूट, मन्दिर-मूर्तियों का विध्वंस कर वापस अपने देश लौटते रहे। उनके द्वारा विजित प्रदेशों पर राज्य स्थापित करने के प्रयास भी होते रहे, किन्तु वह अस्थायी रहे। सन् १२०६ ई. में दिल्ली की गद्दी पर कुतुबद्दीन ऐबक द्वारा सल्तनत स्थापित करने के साथ भारत में मुसलमानी राज्य की नींव सुदृढ़ हो गयी और तबसे अंग्रेजों द्वारा सत्ता हथियाने पर्यन्त विदेशी व विधर्मी मुसलमान शासक भारत की गैर- इस्लामिक बहुसंख्यक जनता के भाग्यविधाता बने रहे। उनके आगमन से भारतीय राजनीति, अर्थ व्यवस्था, संस्कृति और समाज में एक प्रबल, नवीन, अपरिचित, विरोधी अथवा प्रतिकूल तत्त्वों के प्रवेश ने विविध प्रकार की उथल-पुथल, क्रान्तियों और आन्दोलनों को जन्म दिया। प्रारम्भ में देशी राज्य सत्ताओं और भारत की जनता ने इन विदेशी आक्रान्ताओं का प्रबल प्रतिरोध किया, किन्तु शनैः शनैः अपनी शक्ति क्षीण होने के कारण उन्हें अपने धर्म-संस्कृति के संरक्षण हेतु अन्य उपाय खोजने पड़े और परिस्थिति के अनुसार जीने का मार्ग अपनाना पड़ा।

जब तारण स्वामी हुए दिल्ली की गद्दी पर विदेशी मुसलमान सत्ता को स्थापित हुए २४२ वर्ष हो चुके थे और देश के अन्य भागों में भी उनकी राज्य सत्ता का प्रसार हो चला था। धार्मिक परम्पराओं के संरक्षण और अपने सामाजिक संगठन के साथ समाज में आ रही विकृतियों और पनप रहे अंधविश्वासों को दूर करने की दिशा में

भी भारतीय सन्तों का ध्यान गया और उन्होंने अपनी-अपनी समझ और आवश्यकतानुसार जनसामान्य को जनभाषा में उनके प्रति सचेत किया। पूर्वोत्तर भारत में रामानन्द व सन्त कबीर, पंजाब में गुरुनानक, मध्य भारत में सन्त दादू व सन्त सुन्दरदास, बंगाल में चैतन्यदेव, बिहार में विद्यापति ठाकुर और दक्षिण में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम व रामदास इस भारतीय धर्म एवं समाज-सुधार आन्दोलन के प्रमुख पुरस्कर्ता रहे। दिगम्बर जैन मुनियों और श्वेताम्बर जैन यतियों को भी अपनी चर्या के निर्वाह और अपनी-अपनी आम्नाय के धर्म संरक्षण हेतु समयानुकूल व्यवस्थाएं करनी पड़ीं। फलस्वरूप दिगम्बर आम्नाय में भट्टारक नामक एक नये प्रकार के धर्मगुरु की व्यवस्था उदय में आयी और इन धर्मगुरुओं ने स्थान-स्थान पर अपने मठ और गद्दी स्थापित कर अपने धार्मिक साहित्य के संरक्षण-पल्लवन के साथ ही स्थानीय अनुयायियों के धार्मिक-सामाजिक कृत्यों के नियमन पर अपना अंकुश कायम किया और धार्मिक क्रियाकाण्डों को भी प्रश्रय दिया। पाण्डे, पण्डितों और पुजारियों ने भी उसमें सहयोग किया। अहमदाबाद में लौंकाशाह (१४२०-१४७६ई.) नामक जैन सुधारक ने मुसलमानी शासनकाल को मन्दिर-मूर्तियों के लिये प्रतिकूल समझकर मन्दिर-मूर्तियों का विरोध किया । उनके द्वारा प्रचलित लुंकामत कालान्तर में श्वेताम्बर-स्थानकवासी सम्प्रदाय कहलाया।

बुन्देलखण्ड में जहाँ तारण स्वामी का जन्म हुआ, और सेमरखेड़ी जहाँ बाल्यावस्था से लेकर उनका प्रायः सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ, में कोई भट्टारक पीठ होने का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु दतिया जिलान्तर्गत सोनागिरि में चन्द्रभूषण भट्टारक की पीठ तथा ग्वालियर और अटेर में भट्टारक पीठें रहीं, ऐसा कहा जाता है। कदाचित् उक्त भट्टारक पीठ में से किसी पीठ का प्रभावक्षेत्र सेमरखेड़ी में रहा हो। भट्टारक प्रायः बीसपंथी धार्मिक क्रियाकाण्ड के पोषक रहे और स्थानीय जाति विशेष के धर्मानुयायियों के धार्मिक और सामाजिक कृत्यों के नियन्ता बने रहे। तारण स्वामी ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। उन्हें उनमें निहित शुद्धात्म तत्व और धर्म के मर्म ने प्रभावित किया। उन्हें लगा कि समाज में प्रचलित धार्मिक विधि-विधान, सामाजिक रीतिरिवाज और जातिगत ऊँच-नीच का भेदभाव शास्त्रों में निरूपित धर्म के स्वरूप से भिन्न हैं। उन्होंने स्वयं तरने के साथ-साथ औरों को भी, बिना किसी जाति भेद के, तारने का अपने मन में संकल्प लिया। तीस वर्ष तक अपने अध्ययन-अध्यवसाय को आगे बढ़ाते हुए सेमरखेड़ी में श्रावक धर्म का पालन उन्होंने

किया और जन सामान्य को शास्त्रों का सही मर्म समझाने हेतु स्थानीय जनभाषा में १४ कृतियों का प्रणयन किया।

तारण स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ हैं- (१) **मालारोहण** की ३२ गाथाओं में 'सम्यक्दर्शन' परिभाषित किया गया है; (२) **पण्डित पूजा** में ३२ गाथाओं में 'सम्यक्ज्ञान' का विवेचन है; (३) **कमल बत्तीसी** की ३२ गाथाओं में 'सम्यक्चारित्र' का प्रतिपादन हुआ है; (४) **श्रावकाचार** में ४६२ गाथाओं में अव्रत सम्यक्दृष्टि श्रावक और व्रती श्रावक के आचार का कथन है; (५) **ज्ञान समुच्चय सार** की ६०८ गाथाओं में भगवान की द्वादशांग वाणी में निहित ज्ञान के समुच्चय का सारभूत वर्णन है; (६) **उपदेश सुद्ध सार** की ५८६ गाथाओं में साधना मार्ग में आने वाले बाधक कारणों और उनके निराकरण का निरूपण है; (७) **त्रिभंगीसार** में २ अध्याय और ७१ गाथाएं हैं जिनमें जिन भावों से कर्मों का आस्रव होता है और जिनसे आस्रव का निरोध होता है, उन्हें व्याख्यायित किया गया है; (८) **चौबीस ठाणा** में २७ गाथाओं और पाँच गद्यमय अध्यायों में अज्ञान मोहवश संसार में जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ जीव जिन २४ स्थानों में जा सकता है, उनका वर्णन कर इस संसार से छूटने का उपाय बताया गया है; (९) **ममल पाहुड** की ३२०० गाथाओं में अनेक आध्यात्मिक रहस्यों को सुलझाया गया है और अपने उपयोग को ममल स्वभाव में लगाने की साधना द्वारा परमानन्द प्राप्त करने का मार्ग जीव को सुझाया गया है; (१०) **खातिका विशेष** की १०४ कारिकाओं (सूत्रों) में संसार का स्वरूप समझाया गया है; (११) **सिद्ध स्वभाव** की २० कारिकाओं में साधक, साधना, सिद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के उपाय और उसकी महिमा का विवेचन है; (१२) **सुन्त स्वभाव** की ३४ कारिकाओं में शून्य स्वभाव का दर्शन तथा समाधि दशा का रहस्य भरा हुआ है, (१३) **छद्मस्थ वाणी** में १२ अध्यायों में ६७१ सूत्र है जिनमें भगवान महावीर स्वामी के समवसरण, तारण स्वामी, उनके शिष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का समाधान तथा समय-समय पर उन्हें हुई अनुभूतियों का वर्णन है; तथा (१४) **नाममाला** नामक गद्य ग्रन्थ में तारण स्वामी के शिष्य मण्डल का परिचय दिया गया बताया जाता है।

निश्चय और व्यवहार से समन्वित जीवन जीने वाले और कथनी-करनी इकसार रखने वाले तारण स्वामी ने लोगों को धर्म की यथार्थ साधना का मार्ग सुझाया और उनमें सद्-असद् का विवेक करने की भावना जागृत की। यद्यपि लौंकाशाह की तरह तारण स्वामी ने मंदिर-मूर्ति पूजा का निषेध तो नहीं किया, किन्तु तत्कालीन

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए चैत्यालयों में मूर्ति के स्थान पर शास्त्रों की स्थापना करके उनकी पूजा और स्वाध्याय करने का मार्ग उन्होंने सुझाया। उनके द्वारा जैन धर्म के शुद्ध आत्म स्वरूप का जिस प्रकार निरूपण किया गया उससे धर्म के तत्कालीन ठेकेदार उनसे रुष्ट हो गये और कहा जाता है कि उन्होंने उनकी हत्या के योजनाबद्ध असफल प्रयास भी किये। किन्तु उन सबसे अप्रभावित रह वह अपने मिशन में दृढ़ता से आगे बढ़ते रहे। उनके बचनों और कृतियों से प्रभावित हो विभिन्न जातियों के अनेक जन काफी बड़ी संख्या में उनके शिष्य-अनुयायी बन गये। उनकी शिष्य मण्डली में लक्ष्मण पाण्डे, चिदानन्द चौधरी, परमानन्द विलासी, सुलपस्थ तेली और लुकमानशाह नामक मुसलमान भी सम्मिलित रहे बताये जाते हैं।

तारण स्वामी ने विक्रम संवत् १५७२ (१५१५ ई.) की ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी को ६६ वर्ष ५ माह १५ दिन की आयु में मध्यप्रदेश के गुना जनपद में मल्हारगढ़ के विपिन (श्री निसई जी क्षेत्र) में देह त्याग किया था।

प्रारम्भ में तारण स्वामी के अनुयायियों में उनके उपर्युक्त १४ ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां चैत्यों में स्थापित कर उनकी पूजन और स्वाध्याय का प्रचलन रहा। मुद्रण की सुविधा हो जाने पर इन ग्रन्थों का मुद्रण हुआ और मुमुक्षुओं ने तत्कालीन जनभाषा में रचित उन ग्रन्थों को आज की भाषा में समझने हेतु उन पर टीकाएं भी रचीं और इस प्रकार उन्हें जनसामान्य के लिये सुबोध करने का प्रयास किया गया। ब्र. सीतल प्रसाद जी ने ही उनके **श्रावकाचार, ज्ञान समुच्चय सार, उपदेश सुद्ध सार, त्रिभंगीसार, चौबीसठाणा** और **ममल पाहुड** पर सन् १९३२ई. से १९३८ ई. के मध्य सरल भाषा में टीकाएं रची थीं।

तारण स्वामी के अनुयायी मुख्यतया बुन्देलखण्ड के गहोई वैश्य समाज और चरणागर जैन समाज, गोलालारे जैन समाज, दिगम्बर जैन परवार समाज के समैया और दो- सके समाजों से, अजैन असाटी समाज से तथा अग्रवाल अयोध्यावासी समाज से हैं। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, दिल्ली और पश्चिम बंगाल आदि देश के विभिन्न अंचलों में निवास कर रहे इन अनुयायियों की संख्या आज भी ४०,००० के आसपास अनुमानित है। उनके चैत्यालयों की संख्या भी १६५ बताई जाती है।

अपने समय में आध्यात्मिक क्रान्ति करने वाले सुधारवादी सन्त तारण स्वामी, जिनका आज तक प्रभाव है, को दिवंगत हुए इस वर्ष ज्येष्ठ कृष्ण ६ को ४८९ वर्ष हो गये। उनकी इस पुण्यतिथि पर उन सुधारक विद्वान सन्त का स्मरण कर हम अपनी विनयांजलि अर्पित करते हैं।

- रमा कान्त जैन

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

स्वस्तिक

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

एक अत्यन्त पवित्र एवं महत्वपूर्ण मांगलिक चिन्ह तथा रहस्यपूर्ण सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में 'स्वस्तिक' जिसे चालू बोलचाल में सतिया, साथिया या सांथिया भी कहते हैं, बहुव्यापी एवं लोकप्रिय रहा है। स्वयं जैन परम्परा में ही नहीं, प्रायः सभी जैनेतर प्राचीन भारतीय परम्पराओं में तथा भारत के बाहर भी अनेक विदेशों में, स्वस्तिक अथवा आकार प्रकार में उससे बहुत कुछ मिलते जुलते प्रतीकों का प्रयोग होता आया है।

एक खड़ी रेखा को उतनी ही बड़ी एक पड़ी रेखा समद्विभाजित करती है और इस धन के चिन्ह के चारों सिरों से एक-एक रेखा जो उक्त खड़ी या पड़ी रेखा से आधी लम्बी होती है, समकोण बनाती हुई प्रदक्षिणा क्रम से खींची जाती है। इन चारों रेखाओं के सिरों को बाहर की ओर किंचित घुमाव दे दिया जाता है। सबसे ऊपर की पड़ी रेखा के ऊपर तीन बिन्दु बनाये जाते हैं, जिनके ऊपर अर्धचन्द्र बनाया जाता है और उसके ऊपर एक शून्य स्थापित किया जाता है। कभी-कभी चारो कोष्ठकों में भी एक-एक बिन्दु बना दिया जाता है, अथवा उनके साथ ही बाहर की ओर भी चारों दिशाओं में एक-एक बिन्दु बना दिया जाता है। यह स्वस्तिक का जैन परम्परा में पूर्ण विकसित रूप है, वैसे उसका मूल रूप एवं मुख्य अंश उक्त बिन्दुओं आदि से रहित मात्र रेखाओं से बना आकार ही है।

स्वस्तिक के मूलरूप को कलाकारों ने अनेक सुन्दर रूप प्रदान किये जिनके उदाहरण मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त साधिक दो सहस्र वर्ष प्राचीन जैन आयाग-पट्टों में, उससे भी पूर्वकाल की उड़ीसा की खारवेल-कालीन हाथीगुम्फा आदि में तथा उत्तरवर्ती काल के अनेक जैन मूर्त्ताङ्कनों, स्तम्भों, वेदिकाओं, सूचियों, छतों, भित्तियों आदि में और भित्ति एवं लघु चित्रों आदि में प्राप्त होते हैं।

जैन मान्यतानुसार अष्ट-मांगलिक द्रव्यों तथा तीर्थंकरादि महापुरुषों के शरीर में लक्षित १००८ लक्षणों में भी स्वस्तिक परिगणित है। सुमेरु पर्वत की जिस पांडुक शिला पर तीर्थंकर का जन्माभिषेक होता है उस पर भी स्वस्तिक बना रहता है। जिस शिला पर बैठकर तीर्थंकर केशलोंचपूर्वक जैनेश्वरी दीक्षा धारण करते हैं उस पर इन्द्राणी पहले ही रत्नचूर्ण से स्वस्तिक बना देती है। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व का लांछन भी स्वस्तिक था, और एक अत्यन्त प्राचीन पार्श्व प्रतिमा के ऊपर बने सप्त-फण में से एक फण के ऊपर भी स्वस्तिक बना है (वह प्रतिमा लखनऊ के राजकीय संग्रहालय में है)। भूमि शुद्धि, वेदी प्रतिष्ठा, वेदी पर तथा सिंहासन पर जिन प्रतिमा विराजमान

करने के पूर्व स्वस्तिक बनाया जाता है। पूजन की थाली, ठौना, झारी आदि पर भी स्वस्तिक बनाया जाता है। अन्य अनेक धार्मिक मांगलिक कार्यों में भी स्वस्तिक का प्रयोग किया जाता हे।

इस प्रतीक का सीधा सादा परम्परानुमोदित रहस्य या भाव तो यही प्रतीत होता है कि खड़ी रेखा चेतन तत्व (आत्मा या जीव) की सूचक है, पड़ी रेखा जड़ तत्व (पुद्गल/अजीव) की सूचक है। दोनों का संयोग ही संसार है। सिरों की चार रेखाएं चतुर्गति की सूचक हैं, और उनके सिरों के घुमाव यह सूचित करते हैं कि जड़ पुद्गल के संयोग से जीवात्मा जिस चतुर्गति रूप संसार में निरन्तर संसरण करता आ रहा है, उससे मुक्त होने के लिए भी छटपटाता रहता है। भीतर के चार बिन्दु चार घातिया कर्मों के सूचक हैं जो उसे संसार में रोके हुए हैं, तथा उन चार आराधनाओं (ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप) के भी जिनकी साधना से उक्त कर्मों को समाप्त करके वह अनन्त चतुष्टय का धनी हो जाता है। बाहर के चार बिन्दु अनन्त चतुष्टय के सूचक हैं। ऊपर के तीन बिन्दु रत्नत्रय के प्रतीक हैं, जिनकी पूर्णता अर्धचन्द्र से सूचित सिद्धालय में स्थित शून्य के रूप में निराकार सिद्धत्व का बोध कराती है। इस प्रकार पूर्ण स्वस्तिक संसार और मोक्ष का प्रतीक है। वह निर्ग्रन्थ श्रमण तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित धर्मतत्व का तथा उसके स्वरूप, हेतु और लक्ष्य के रहस्य का द्योतक है। वह कल्याणप्रद, कल्याण स्वरूप, परम मंगल है। अतः शाश्वत और अनादि निधन है।

वस्तुतः प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता जनरल कनिंघम ने अपनी पुस्तक Coins of Ancient India में पृ.१०१ पर तथा सर मोनियर मोनियर-विलियम्स ने भी अपनी Sanskrit - English Dictionary, द्वि. सं. में पृ. १२८३ पर स्वस्तिक को मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि के 'सु' और 'अस्ति' अक्षरों के संयोग से बना बताया है, जिससे वह 'स्वस्ति' (कल्याण या मंगल) शब्द का वाचक प्रतीक बन गया। कुछ जैनेतर विद्वान इसे सूर्य का प्रतीक, तो कुछ विष्णु भगवान के सुदर्शन चक्र का प्रतीक, बताते हैं। कुछ विद्वान उसका मूल प्राचीन यूनानी क्रास में या मिश्र अथवा माल्टा में प्रचलित क्रास में खोजते हैं, कुछ ईसा की सलीब के प्रतीक क्रास में और किन्हीं का मत है कि यह सर्प मिथुन का द्योतक है जो प्रजनन या सृष्टि की आदिम परिकल्पना का प्रतीक है (देखिये, **महावीर जयन्ती स्मारिका,** १९६३, में प्रकाशित राय गोविन्दचन्द्र का अंग्रेजी लेख)। अभी कई पत्रों में विद्वद्वर पं. हीरालाल शास्त्री का 'सांथिया' विषयक लेख प्रकाशित हुआ है। वह उसे ब्राह्मी लिपि के 'ऋ' अक्षर से बना, अतएव भगवान ऋषभदेव का द्योतक मानते हैं। उन्होंने अपने उपरोक्त मत के समर्थन में उसके भाषा रूप को प्राकृत रूपों के माध्यम से खींचकर संस्कृत शब्द रूप संस्थापन की क्लिष्ट कल्पना की। पंडित जी ने अपने लेख के प्रारंभ में ही उसमें

चतुर्गति रूप संसार का भाव निहित होने पर भारी आपत्ति की है, किन्तु अपनी कई कल्पनाओं-परिकल्पनाओं के बाद अन्त में जो भवितार्थ निकाला है उसमें हमारे द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त स्वरूप को ही प्रायः स्वीकार कर लिया है। उन्हें शिकायत है कि मुनि विद्यानन्द जी तथा अन्य विद्वानों से जब उन्होंने अपने मत की चर्चा की तो सबने मौन धारण कर लिया - कोई प्रतिक्रिया नहीं प्रदर्शित की। किन्तु इसमें उन महानुभावों का क्या दोष ? अन्त में पंडित जी स्वयं परम्परानुमोदित स्वरूप को ही प्रायः मान्य कर रहे हैं।

यह बात अवश्य ध्यातव्य है कि ऐसे रहस्यात्मक सांस्कृतिक प्रतीकों की ऐतिहासिकता नहीं खोजी जा सकती। साहित्य, शिलालेखों या कला आदि में उसके प्राचीनतम अंकनों की शोध-खोज तो की जा सकती है, किन्तु किसने कब उसकी सर्वप्रथम कल्पना या आविष्कार किया, यह नहीं कहा जा सकता। किसी काल या देश की किसी लिपि का कोई अक्षर संयोग से या जान-बूझकर उक्त प्रतीक से मिलते-जुलते आकार का बन गया तो इससे वह अक्षर ही उसका मूलाधार नहीं बन जाता। ब्राह्मी लिपि के जो उपलब्ध नमूने मिलते हैं, उससे सहस्रों वर्ष पूर्व के सिन्धु-घाटी सभ्यता के अवशेषों में स्वस्तिक का प्रयोग प्राप्त होता है। अनेक मृण्मुद्राओं पर अकंन ही नहीं, वहाँ नगरों की सड़कें भी स्वस्तिकाकार थी। भाषा भी उस देशकाल की सर्वथा भिन्न थी। दूसरे, विभिन्न परम्पराओं में एक ही प्रतीक की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं होती हैं। जैनों का त्रिरत्न सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र का सूचक है, तो बौद्धों में वह बुद्ध, संघ और धर्म का, ब्राह्मण परम्परा में शिव के त्रिशूल का या ब्रह्मा-विष्णु-महेश का, ईसाइयों में ईश्वर, ईश्वरपुत्र और पवित्रात्मा का, इत्यादि।

अस्तु, स्वस्तिक एक अनादि निधन, शाश्वत, परम्परामूलक प्रतीक है। जैन परम्परा से इसका घनिष्ठतम सम्बन्ध है और संभवतया उसी से अन्यत्र उसका प्रचार-प्रसार हुआ। वह किसी व्यक्ति विशेष की कल्पना से प्रसूत या स्थापित कोई ऐतिहासिक प्रतीक नहीं है वरन् शाश्वत विश्वतत्व या सत्य का द्योतक रहस्यात्मक प्रतीक (मिस्टिक सिम्बल) है। यों अक्षर भी ध्वनियों के प्रतीक होते हैं, और शब्द तत्तद् अर्थों के, किन्तु ये रहस्यात्मक प्रतीक गूढ़तर एवं विशद व्यापक अर्थों के प्रतीक होते हैं। जैन सांस्कृतिक प्रतीक स्वस्तिक उनमें प्रायः सर्वोपरि है और उसकी व्याख्याओं को भी सीमित नहीं किया जा सकता।

[जैन-सन्देश (शोधाङ्क ३५), १७ जुलाई, १९७५, से साभार उद्धृत]

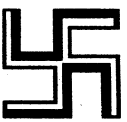

सम्पादकीय

भगवान महावीर का संघ परिवार

३ जुलाई, २००४ (श्रावण कृष्ण प्रतिपदा) को इस युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान महावीर के धर्म शासन को प्रारम्भ हुए २५६१ वर्ष हो गए। आचार्य गुणभद्र ने **उत्तरपुराण** (८९७ ई.) में भगवान महावीर के संघ परिवार का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार किया है-

"श्री वर्धमान स्वामी के इन्द्रों द्वारा पूजनीय ११ गणधर थे-- तीन सौ ११ अंग और १४ पूर्वों के धारक थे, ९९०० यथार्थ संयम को धारण करने वाले शिक्षक थे, १,३०० अवधिज्ञानी थे, सात सौ केवलज्ञानी परमेष्ठी थे, नौ सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, पांच सौ पूजनीय मनःपर्ययज्ञानी थे और चार सौ अनुत्तरवादी थे, इस प्रकार सब मुनीश्वरों की संख्या चौदह हजार थी। चन्दना को आदि लेकर ३६००० आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकाएं थीं। असंख्यात देव-देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए बारह गणों से परिवृत्त भगवान ने सिंहासन के मध्य स्थित हो अर्ध-मागधी भाषा के द्वारा छह द्रव्य, सात तत्त्व, संसार और मोक्ष के कारण तथा उनके फल का प्रमाण, नय, निक्षेप आदि उपायों के द्वारा विस्तारपूर्वक निरुपण किया। भगवान का उपदेश सुनकर स्वाभाविक बुद्धिवाले कितने ही शास्त्रज्ञ सभासदों ने संयम धारण किया, कितनों ने ही संयमासंयम धारण किया और कितनों ने अपने भव्यात्म गुण की विशेषता से शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण किया। (**उत्तरपुराण** श्लोक ३७३-३७८)

यह ध्यातव्य है कि भगवान महावीर के संघ परिवार में ७०० केवलज्ञानी थे जबकि श्रुत केवली केवल तीन सौ थे। कदाचित् ये सभी केवलज्ञानी या इनमें से अधिकांश केवलज्ञान प्राप्ति के पूर्व श्रुतकेवली भी रहे हों, पर केवलज्ञान प्राप्ति के लिए श्रुतकेवली होना आवश्यक नहीं है और सभी श्रुतकेवली उसी भव से केवलज्ञान भी नहीं प्राप्त करते जैसे कि अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी पर्यन्त पांच श्रुतकेवलियों ने केवल स्वर्गारोहण किया। यह ज्ञान के ऊपर भावों तथा चरित्र की निर्मलता की सर्वोपरि महत्ता को दर्शाता है।

भगवान के समवसरण में इन ७०० केवलज्ञानियों के बैठने का स्थान गणधरों के बैठने के स्थान से नीचे होता था जबकि वे परमेष्ठी थे और उनका आसन जिनेन्द्र देव के समकक्ष या कम से कम गणधर देवों के ऊपर, जो केवल श्रुत केवली थे, होना चाहिए था। हमारी यह भी बहुत दिनों तक समझ में नहीं आया था कि केवल ज्ञानी महात्मा आखिर भगवान के समवसरण में जाते ही क्यों हैं जब कि उनका आत्म विकास जिनेन्द्र देव के समान ही पूर्ण हो चुका होता है। फिर एक दिन अनायास ही समाधान सूझ गया। ये सभी केवलज्ञानी महामुनि गणधरों द्वारा दीक्षित मुनि होने के कारण तीर्थंकर देव के शिष्यानुशिष्य थे जो द्रव्यलिंग के साथ-साथ पूर्ण भावलिंगी भी थे तथा जो पूर्ण आस्था एवं मनोयोग से तीर्थंकर प्रभु का दिव्य धर्मोपदेश न केवल सुनते ही रहे थे तथा हृदयङ्गम करते रहे थे वरन् साथ-साथ ही अपने साध्वाचार को भी तद्नुरूप ढालते रहे थे जिसका सुफल उन्हें अल्प अवधि में ही केवलज्ञान की परम सिद्धि के रूप में गणधरदेवों से भी पहिले मिल गया। चूंकि गणधरदेव उनके गुरुवर्य थे, वे विनयशीलता के कारण उनके समकक्ष बैठते नहीं थे। भगवान महावीर का अन्तिम धर्मोपदेश जिसके आधार से **उत्तराध्ययन सूत्र** संकलित किया गया माना जाता है उसमें उसका प्रथम अध्ययन ही **विनय श्रुत** है जिसमें आत्मोन्नति के लिए विनय पर अत्यधिक बल दिया गया है।

भगवान के संघ परिवार में इन ७०० केवलज्ञानियों की उपस्थिति यह भी दर्शाती है कि भगवान का धर्मोपदेश पूर्णतया व्यावहारिक था तथा इतने महात्माओं ने उसका सम्यक् अनुसरण करके अल्प काल में ही केवलज्ञान की परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी।

भगवान महावीर के संघ परिवार में आर्यिकाओं की संख्या मुनियों की अपेक्षा ढाई गुणा से अधिक थी। स्त्रियों में धर्मानुराग एवं व्रत आदि पालने की प्रवृत्ति आज भी पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक देखने में आती है। इसी प्रकार जबकि उनके संघ परिवार में एक लाख श्रावक थे श्राविकाओं की संख्या उसकी तिगुनी थी, जो उस समय प्रचलित बहु विवाह प्रथा तथा परिवार में एकाध विधवा होने के कारण रही होगी। ये सभी श्रावक-श्राविकाएं भगवान द्वारा उपदिष्ट श्रावकाचार के सभी नियमों का पालन करने वाले थे। भगवान में आस्था रखने वाले अव्रती ग्रहस्थों की संख्या तो अवश्य ही कहीं अधिक रही होगी।

- अजित प्रसाद जैन

जैन वाङ्मय एवं कला के विशेष सन्दर्भ में मांगलिक प्रतीक 'श्रीवत्स'

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव

भारतीय कला हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। यहाँ के धर्म, दर्शन और संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। इस गुरुतर कार्य के लिए भारतीय कलाकारों ने कतिपय प्रतीकों का सहारा लिया है। ये प्रतीक कला की वर्णमाला कहे जा सकते हैं। प्रतीक वस्तुतः बीज के समान होते हैं जिनमें महावृक्षों का स्वरूप अन्तर्निहित रहता है। विभिन्न विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं विश्वासों को इन प्रतीकों ने साकार बनाया है। कला-प्रतीक न केवल विचारों को अभिव्यक्त करते हैं वरन् शोभा, आरक्षा एवं मांगलिक भावनाओं की संपूर्ति भी करते हैं। जहाँ ये कला-प्रतीक किसी विशिष्ट विचार या भाव की सृष्टि से निर्मित नहीं भी होते हैं, वहाँ भी ये अपने स्वरूप का मांगलिक प्रभाव डालते हैं और दर्शक के शारीरिक एवं मानसिक सौंदर्य-बोध का परिष्कार करते हैं। इसीलिए धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक उत्सवों अथवा पारिवारिक समारोहों के अवसर पर कतिपय प्रतीकों की प्रतिष्ठा करके मांगलिक वातावरण की सृष्टि की जाती है।

भारतीय कला-प्रतीक पहले सार्वजनीन थे। उन्हें सम्पूर्ण समाज में समान रूप से अपनाया गया था। बाद में इनमें से अधिकांश प्रतीकों को जैन, बौद्ध अथवा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों ने अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अपने इष्ट देवों अथवा उनके धर्मोपदेशों से जोड़ लिया। मूलतः ये मांगलिक प्रतीक किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित न होकर सार्वजनीन थे और सर्वसाधारण में लोकप्रिय थे। आज भी स्वस्तिक, मीन-मिथुन, कलश, पञ्चाङ्गुल, पदचिह्न आदि कतिपय ऐसे प्रतीक हैं जो सभी धर्मो, सम्प्रदायों, जातियों अथवा समूहों में समान रूप से प्रचलित हैं।

यद्यपि इन प्रतीकों का उल्लेख सभी धर्मों के साहित्य में पाया जाता है, तथापि इनमें मांगलिकता का भाव जैन साहित्य में अधिक मुखर है। एक बात और, आगे चलकर आठ मांगलिक प्रतीकों के समूह को जैन धर्म ने 'अष्टमंगल' के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की और उसकी परम्परा को आज तक जीवित रखा है। जैन धर्मावलम्बी आज भी 'अष्टमंगलों' की पूजा करते हैं और इन्हें अपने मंदिरों में प्रायः सिरदल पर अंकित करते हैं।

जैन ग्रंथों में जिन अष्टमांगलिक प्रतीकों का उल्लेख मिलता है वे हैं - स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमान, भद्रासन, कलश, दर्पण और मीन-मिथुन। जैन **उपांग औपपातिक** के सूत्र ३१ में इन अष्टमंगलों की सूची दी गई है। **रायपसेणियसुत्त** की कण्डिका ६६ में 'मंगलभित्तिचित्र' के अन्तर्गत इन्हीं प्रतीकों का उल्लेख मिलता है। इसी ग्रंथ में अन्यत्र (सूत्र १५) तोरण पर अंकित अष्टमांगलिक प्रतीकों का विवरण मिलता है। **तिलोयपण्णत्ति** (अधिकरण २, गाथा २२-६२) में भवनों का वर्णन है जिनमें जिनालयों की जिन-मूर्तियों के साथ अष्टमंगलों की भी चर्चा है। लगभग इसी प्रकार अष्टमंगलों के विवरण **प्रवचनसारोद्धार, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, उत्तराध्ययनसूत्र, अभिधानचिन्तामणि** और **समवायांगसूत्र** में भी मिलते हैं।

आचारदिनकर में इन अष्टमंगलों का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है- "कलश जिन का प्रतीक है; दर्पण आत्मदर्श के लिए है; भद्रासन तीर्थंकर के चरण से पवित्र एवं संपूज्य है; स्वस्तिक शान्ति का बोधक है; वर्धमानक सम्पति, यश तथा गुणों का संवर्धक है; नन्द्यावर्त अपने नौ कोणों के कारण नव-निधियों का प्रतीक है; मीन-मिथुन काम का पताका-चिह्न है जो पराजित होने के कारण जिन की पूजा प्रकट करता है; और श्रीवत्स जिन के हृदय से प्रस्फुटित कैवल्य (ज्ञान) का साक्षात् स्वरूप है" (यू.पी. शाह. **जैन आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर**, सं. ए. घोष, खण्ड ३, नई दिल्ली, १९७५, पृ. ४७१)।

स्वस्तिक और श्रीवत्स भारतीय जीवन के सर्वाधिक मांगलिक प्रतीक थे - स्वस्तिक सार्वभौमिकता का एवं श्रीवत्स सुख-सम्पन्नता का। 'स्वस्ति-श्री' इन्हीं का संक्षिप्त रूपान्तर था जो स्वस्तिवाचन के रूप में साहित्य और अभिलेखों में मिलता है। जिस प्रकार साहित्य में दोनों का साथ-साथ उल्लेख मिलता है, उसी प्रकार भारतीय कला में स्वस्तिक और श्रीवत्स साथ-साथ रूपायित किए गए हैं। हाथीगुम्फा तथा चन्देरी अभिलेखों के प्रारंभ में दोनों प्रतीक साथ-साथ उकेरे गए हैं, जबकि मथुरा के दो प्रस्तर-अभिलेखों में श्रीवत्स प्रारंभ में और स्वस्तिक अंत में उत्कीर्ण है। हाथीगुम्फा अभिलेख के प्रारंभ में लेख के बाईं ओर ऊपर श्रीवत्स तथा उसके नीचे स्वस्तिक उत्कीर्ण है। यहाँ श्रीवत्स की आकृति वैसी ही है जैसी उदयगिरि के रानीगुम्फा के तोरणद्वार पर है। इन दोनों प्रतीकों का एक साथ अंकन मध्यप्रदेश के गुना जिले में स्थित चन्देरी शिलालेख के ऊपर मिला है। कालान्तर में प्रतीकों के स्थान पर अभिलेखों के प्रारंभ में स्वस्ति, ओम स्वस्ति, स्वस्ति-श्री लिखा जाने लगा था। प्रारंभिक

ईसवी शती के ऐसे अनेक अभिलेख पाए जा चुके हैं (डी.सी. सरकार, **सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स,** खण्ड १)। पारिवारिक पत्रों में भी भारतीय स्वाधीनता-प्राप्ति तक 'स्वस्ति श्री' लिखने की परम्परा जीवित थी। संभव है, हमारे ग्रामीण जीवन में अब भी इसका प्रचलन मौजूद हो।

जैन कला में श्रीवत्स के विविधरूपी अंकन मिलते हैं। मथुरा के कंकाली टीले से हजारों जैन कलाकृतियाँ मिली थीं जिनमें तीर्थंकर-प्रतिमाएँ, वास्तुखण्ड और आयागपट्ट भी थे। अर्हतों की पूजा के लिए (अर्हत पूजाये) निर्मित एवं स्थापित ये आयागपट्ट नागार्जुनकोण्ड के बौद्ध आयकखम्भ और नागरी अभिलेख के पूजा-शिला की कोटि के शिलापट्ट थे। इन आयागपट्टों पर जैन प्रतीकों का प्राचीनतम रूप मिलता है। प्रथम शती ई.पू. और प्रथम शती ई. के बीच निर्मित इन आयागपट्टों में कुछ पर केवल अष्टमांगलिक प्रतीक उत्कीर्ण हैं जिनमें श्रीवत्स भी है और कुछ पर इनके साथ केन्द्र में तीर्थंकर की आसनस्थ प्रतिमा भी उत्कीर्ण है। आयागपट्टों से यह तथ्य भी स्वयं प्रकट हो जाता है कि पहले केवल मांगलिक चिह्नों की पूजा की जाती थी, बाद में तीर्थंकर की प्रतिमा पूजी जाने लगी। यह आयागपट्ट प्रतीक-पूजा और तीर्थंकर-पूजा के संधिकाल के साक्ष्य हैं और इन्हें वस्तुतः जैन पूजा के प्रथम सोपान कहा जा सकता है। जैन विद्या और जैन कला के सुप्रसिद्ध विद्वान स्व. यू.पी. शाह का विचार था कि **औपपातिक** के सूत्र ५ में जिन पुढवी या पुहुमी शिलापट्टों का उल्लेख है, मथुरा के आयागपट्ट उसी परम्परा की अगली कड़ी थे। संभवतः मूर्ति-पूजा के विकास के बाद आयागपट्टों की परम्परा आगे न चल सकी।

मथुरा की जैन पुरा-सम्पदा के एक वेदिका-स्तंभ पर श्रीवत्स का एक सरल स्वरूप अंकित है जो आमने-सामने फन उठाए दो सर्पों जैसा है। संभवतः श्रीवत्स के इसी स्वरूप के कारण मुद्राशास्त्रियों ने इसे 'नाग सिम्बल' कहा था। चौरासी के निकट पाए गए एक द्वार-खण्ड के पार्श्व में गरुड़ तथा श्रीवत्स प्रतीक की सजावट है। गायत्री टीले से मिले एक प्रस्तर-फलक का किनारा सुन्दर पत्तों की बेल से अलंकृत है जिसमें भद्रासन और श्रीवत्स भी फूलों के समान उकेरे गए हैं।

जैन वास्तु अथवा जिनालयों के प्रवेश द्वारों के सिरदल पर अष्टमंगलों को उत्कीर्ण पाया गया है, जिसके साक्ष्य गुजरात में जूनागढ़ के निकट बाबाप्यारा मठ की गुफा सं. K के सिरदल पर, खजुराहो और देवगढ़ के मन्दिरों के सिरदल पर तथा राजस्थान में देलवाड़ा, कुम्भारिया और कुछ अन्य स्थानों के मन्दिरों की आन्तरिक

छतों पर देखे जा सकते हैं। इन सभी स्थानों पर स्वस्तिक और श्रीवत्स अंकित हैं। उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि-खण्डगिरि की रानीगुम्फा, अनन्तगुम्फा और गणेशगुम्फा के प्रवेश द्वारों के शीर्ष श्रीवत्स प्रतीक से अलंकृत हैं। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

जैन धर्म में मूर्ति-पूजा के प्रारंभ होने के बाद श्रीवत्स प्रतीक मंगल चिह्न के साथ-साथ वक्ष-लक्षण भी बन गया तथा तीर्थंकरों की वक्षभूषा के रूप में उनकी शोभा बढ़ाने लगा। मथुरा में गढ़ी गई प्राथमिक तीर्थंकर-प्रतिमाओं के वक्ष पर श्रीवत्स अनुपस्थित है, किन्तु कालान्तर में यही श्रीवत्स तीर्थंकर-मूर्ति की पहचान का आधार बन गया। यह सच है कि यद्यपि वक्षलक्षण के रूप में श्रीवत्स का उल्लेख सबसे पहले **रामायण** में मिलता है जहाँ राम को विष्णु का अवतार मानकर उन्हें 'श्रीवत्सवक्षः' कहा गया है तथापि वक्षलक्षण के रूप में इसे सर्वप्रथम कुषाणकालीन मथुरा की जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों पर उकेरा गया था। कालान्तर में देश भर में न केवल तीर्थंकरों की मूर्तियों पर ही, अपितु विष्णु, वराह, शिव, हनुमान, बुद्ध और यहाँ तक कि द्वारपालों की मूर्तियों पर भी श्रीवत्स शोभायमान हो गया था।

वक्षलक्षण के रूप में श्रीवत्स की परिकल्पना वस्तुतः वक्ष की रोमावली से उद्भूत जान पड़ती है। **हलायुधकोश** में कहा गया है- 'स तु वक्षस्य शुक्लवर्णदक्षिणावर्त लोमावली'। **हरिवंशपुराण** (३/७०/३३) में वामन के प्रसंग में कहा गया है- 'श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजातेन राजता।' हेमचन्द्र ने भी **अभिधानचिन्तामणि** में (२/१३६) में श्रीवत्स को वह विशेष रोमावर्त कहा है जिससे वक्ष श्री से युक्त हो- 'श्रियायुक्तो वत्सो वक्षोऽनेन श्रीवत्सः रोमावर्तविशेषः'। इसीलिए तीर्थंकरों तथा अन्य देवों के वक्ष पर उत्कीर्ण लाक्षणिक चिह्न को श्रीवत्स कहा है।

अब तक पाए गए श्रीवत्स प्रतीक की प्राथमिक आकृति से ऐसा आभास होता है कि मूलतः यह प्रतीक मानव आकृति का रहा होगा। दूसरे शब्दों में इस प्रतीक के उद्भव की प्रेरणा मानव आकृति से मिली होगी। शुंगयुगीन श्रीवत्स प्रतीक को ध्यान से देखने पर यह पालथी मारकर बैठा और अपने हाथों से गले अथवा कंधों को छूता हुआ मानव जान पड़ता है। प्रतीक की निचली गोलाइयाँ पैरों की और ऊपरी हाथों की तथा मध्य की नोक मुख के स्थान पर बनाई गई होगी। इस बात की संपुष्टि गंगा घाटी से मिली मानवाकार ताम्र-आकृतियों, सैन्धव-सभ्यता की कतिपय मृण्मूर्तियों, बोग़ाज़कुई अभिलेख के अक्षरों, शुंगकालीन ताराकार मृण्मूर्तियों (स्टार-शेप्ड टेराकोटा

फिगरीन्स) तथा साँची, सारनाथ, मथुरा और कुछ दक्षिण भारत के अर्द्ध प्रतीकात्मक मानव आकृतियों से हो जाती है।

यदि 'श्रीवत्स' शब्द के भाषागत अर्थ की ओर ध्यान दें तो इस प्रतीक की उद्भावना की गुत्थी सरलता से सुलझाई जा सकती है। श्रीवत्स 'श्री' और 'वत्स' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'श्री' सुख, सम्पत्ति एवं सृजन का प्रतीक है। 'श्री' की कृपा का पात्र होने के नाते मानव उसकी सन्तान (वत्स) के समान है जैसे गोवत्स अर्थात् गाय का वत्स या बछड़ा। अपने पुरुषार्थ एवं परिश्रम से मनुष्य सभी प्रकार की सम्पत्ति अर्जित करता है और उसके उपभोग से सुखी होता है। संसार की समस्त सृष्टि में मानव जैसा रूपवान अन्य प्राणी कहाँ ? उसकी सृजन-शक्ति भी सर्वज्ञात है। अस्तु अपने श्रम, सौन्दर्य तथा सृजन-शक्ति से मानव भी 'श्री' के गुणों से समन्वित है और इसीलिए वह 'श्री-वत्स' कहलाने योग्य है। श्री का वत्स होने से श्रीवत्स भी सुख-समृद्धि का पर्याय माना गया और मांगलिक प्रतीक भी। भारतीय कला में तथा सिक्कों पर लक्ष्मी के साथ अंकित यह प्रतीक श्री से अपना नैकट्य प्रकट करता है। और तो और, तिलकधारी कालेज, जौनपुर, के संग्रहालय में एक ऐसा प्रस्तर-फलक है जिसमें लक्ष्मी के समान दो गज श्रीवत्स प्रतीक का अभिषेक करते उत्कीर्ण हैं। यह फलक श्रीवत्स के मांगलिक और संपूज्य स्वरूप का सबल साक्ष्य समुपस्थित करता है।

कमल भी लक्ष्मी का प्रतीक है, इसीलिए लक्ष्मी का एक नाम कमला भी है। कमल के साथ श्रीवत्स का अंकन भी उसे लक्ष्मी का चिह्न बताता है। तिलकधारी कालेज, जौनपुर, के जिस गजाभिषिक्त श्रीवत्स का ऊपर उल्लेख है वह एक कमल पुष्प के भीतर अंकित है। 'ओम स्वस्ति श्री' से प्रारंभ होने वाले महाराज बाणरस के ६वीं शती के एक कन्नड़ अभिलेख में ऊपर एक पूर्ण विकसित कमल तथा अभिलेख के अन्त में आसन पर प्रतिष्ठित श्रीवत्स का अंकन भी उसी कोटि का है। मथुरा से मिले शोडाष के कोषाध्यक्ष मूलवसु के एक अभिलेख के आरंभ में श्रीवत्स प्रतीक है और उसमें सरोवर, उद्यान, सभा, कुआँ, स्तंभ के साथ-साथ लक्ष्मी प्रतिमा वाले शिलापट्ट का उल्लेख भी श्रीवत्स और लक्ष्मी का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट करता है। पौराणिक विवरणों में भी श्रीवत्स को विष्णु के वक्ष पर कौस्तुभमणि के समान और उस पर श्रीलक्ष्मी का वास बताया गया है। **श्री प्रश्नसंहिता** में लक्ष्मी को 'श्रीवत्सवासिनी' तथा 'श्रीवत्सेऽन्तरहिता' कहा गया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कला में श्रीवत्स प्रतीक की उद्‌भावना संभवतः ढाई-तीन हजार वर्ष से भी पहले (लगभग १५००-११०० ई. पू.) हुई होगी जिसके संभावित उदाहरण हमें अति प्राचीन मातृदेवी की मृण्मूर्तियों के साथ पाई जाने वाली ताराकार पुरुष-मृण्मूर्तियों में ढूँढना होगा। मानवाकार ताम्र-आकृतियों (एन्थ्रॉपोमार्फ़िकफ़िगर्स) एवं बोग़ाज़कुई- अभिलेखों के युग से श्रीवत्स का अस्तित्त्व असंदिग्ध है। इस मांगलिक प्रतीक की परम्परा क्रमशः श्रीचक्रों एवं पूर्व-मौर्य तथा मौर्ययुगीन ताराकार मृण्मूर्तियों के रूप में मौर्यकाल तक सतत् प्रवहमान रही। इसके बाद शुंग युग से लेकर कुषाणकाल तक श्रीवत्स के विविध अंकन भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों (उत्कीर्ण कला, मूर्तिकला, वास्तुकला, दन्तकला, सिक्के, मृण्मुद्राएँ, आयागपट्ट, छत्र, मृद्‌भाण्ड आदि) पर उकेरे गए प्राप्त होते है। कुषाणकाल तक श्रीवत्स प्रतीक प्रायः मांगलिक चिह्न के रूप में ही अंकित किया गया था। महापुरुष लक्षण के रूप में इसे पहली बार मथुरा की तीर्थंकर मूर्तियों पर और फिर मध्यकाल-पर्यन्त विभिन्न देवों की मूर्तियों पर उकेरा गया था।

श्रीवत्स प्रतीक की आकृति के नाना रूप हैं। मानव आकृति से उद्‌भूत इस प्रतीक का प्राथमिक स्वरूप मोहनजोदड़ों की मृण्मूर्तियों, गंगाघाटी के मानवाकार ताम्र उपकरणों पर खड़े मानव का और बोग़ाज़कुई अभिलेखों से लेकर शुंगयुगीन उत्कीर्ण कला में यह बैठै मानव जैसा है। किन्तु मथुरा-शिल्प में इसका अलंकृत रूप प्रकट होने लगा। ऊपरी नोक के स्थान पर मुख जैसा गोला अथवा अगल-बगल के नाग-फणों जैसी भुजाओं के बीच मीन जैसा अलंकरण भी मिलता है। वक्षलक्षण का रूप कुषाणकाल के बाद चतुष्कोणिक पुष्प जैसा और फिर ईंट के आकार का, त्रिकोण तथा बूँद जैसे आकार का भी हो गया था।

- १-बी, स्ट्रीट २४, सेक्टर ६
भिलाई- ४६०००६ (छत्तीसगढ़)

'श्रीवत्स' के कतिपय प्राचीन चित्रांकन

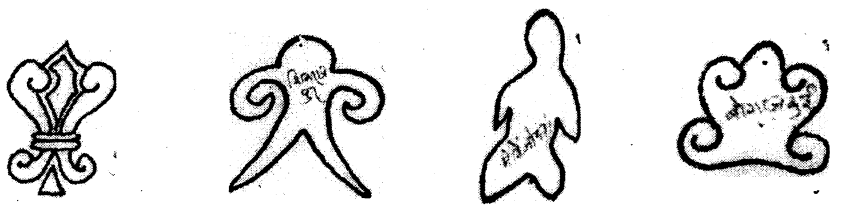

कर्मादान की प्रासंगिकता

- डॉ. रज्जन कुमार

(अर्थोपार्जन के लिये व्यावसायिक कार्य चुनने में बहुहिंसाजन्य, परपीड़नजन्य तथा अनैतिक कर्मों से सद्गृहस्थों को विरत करने के लिये जैनाचार्यों ने कर्मादान (बहु पाप बंध मूलक) कर्मों को गिनाया है जिनका विद्वान् लेखक ने इस लेख में विवेचन किया है। हमारी समझ में आज की परिस्थितियों में कर्मादान के कर्मों को पुनर्भाषित करना आवश्यक हो गया है तथा इसके अंतर्गत अंडे, मांस, हड्डी, चमड़े के व्यापार के अतिरिक्त नकली खाद्य पदार्थों व औषधियों तथा मिलावट (Adulteration) के व्यापार को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिये। हमारे धर्म गुरुओं द्वारा इस पर विचार किया जाना अपेक्षित है। - प्रधान सम्पादक)

'व्यवसाय-चयन' एवं 'पर्यावरण-प्रदूषण' आज की ज्वलंत समस्या है। 'कर्मादान' जैन धर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त है। यह किस प्रकार मानव की आज की समस्या से संबंधित है अथवा यह इनसे बिलकुल ही विलग है, इसी परिप्रेक्ष्य में 'कर्मादान' पर विचार करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

व्यवसाय-चयन : कारण और अपेक्षा

जीविकोपार्जन हेतु मनुष्य व्यवसाय का चयन करता है। व्यवसाय के द्वारा वह धन प्राप्त करता है। धन के द्वारा जीवन की अनिवार्य-आवश्यकताओं को पूरा करता है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई कारण हैं व्यवसाय-चयन के, परंतु सर्वप्रमुख कारण धन प्राप्ति ही है। वर्तमान समय भौतिक समृद्धि का है। भौतिकता की चमक ने अन्य सारी अपेक्षाओं को दबा दिया है। मनुष्य व्यवसाय-चयन में उन पलहुओं पर विशेष ध्यान देता है जो उसे अधिकतर धन प्रदान कर सकें। प्राप्त धन से वह आज की उन सारी अपेक्षाओं को पूर्ण कर लेना चाहता है जो उसे प्रगतिशील, आधुनिक, धनी आदि बना सके। लेकिन यह सब संभव नहीं हो पाता है। फलतः मनुष्य का पतन प्रारंभ हो जाता है। वह वे सारे निंदनीय कार्य करने को विवश हो जाता है जो 'कर्मादान' की श्रेणी में रखे गए हैं।

व्यवसाय चयन हेतु आज Professional education अर्थात् Professional Vocationalism अर्थात् रोजगारपरक शिक्षा तथा

व्यावसायिक-शिक्षा प्राप्त करने पर ज्यादा बल दिया जाता है। नैतिक शिक्षा की भी बात अवश्य की जाती है परंतु व्यावसायिक शिक्षा के समक्ष इसको शायद ही कभी महत्वपूर्ण समझा गया हो। यही कारण है कि आज वोकेशनल एजूकेशन के केन्द्र तो कई हैं लेकिन मौरल एजूकेशन के गिने चुने। ये केन्द्र भी बस यों ही चल रहे हैं। मौरल एजूकेशन के नाम पर योगा की पढ़ाई की जाती है, परंतु वह भी प्रोफेशन की आंधी में अपने मौलिक स्वरूप से विरत हो जाती है। इसके पीछे मूल कारण है-अर्थोपार्जन, अधिक अर्थोपार्जन। ऐसी परिस्थिति में 'कर्मादान' का संदेश कितना प्रासंगिक हो सकता है अवश्य चिंतनीय है।

पर्यावरण-प्रदूषण : कारण और अपेक्षा

मानव पर्यावरण-प्रदूषण का प्रमुख घटक है। वह अपने स्वभावानुसार पर्यावरण का संरक्षण, संवर्द्धन और विनाश करता है। जैन धर्म में मानव-स्वभाव का विश्लेषण लेश्या प्रकरण के अंतर्गत हुआ है। जीव के विचारों का परिणाम शुभ और अशुभ दोनों होता है। जिन परिणामों के द्वारा जीव अपने को लिप्त करता है वह लेश्या है। जीव की प्रवृत्ति, मन, वचन, काय द्वारा संपादित होती है। उसकी यह प्रवृत्ति लेश्या से अनुरंजित होती है। लेश्या अपनी प्रकृति के अनुरूप जीव से विविध प्रकार के कर्म कराता है। पर्यावरण-प्रदूषण भी इसी का परिणाम है। स्वार्थवश वह उन समस्त क्रियाओं का सम्पादन करता है जो निंदनीय एवं त्याज्य हैं। कर्मादान भी उनमें से एक है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पंचतत्व पर्यावरण के मूल घटक हैं। वनस्पति तथा अन्य जीवादि इन पंचतत्वों के स्थूल स्कंध हैं। ये सभी संतुलित अवस्था में रहकर शुद्ध पर्यावरण का निर्माण करते हैं। परंतु आज यह संतुलन बिगड़ गया है। कारण है मनुष्य की आवश्यकता और उन आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा। परिणाम हमारे समक्ष है। हम शुद्ध वायु नहीं प्राप्त कर सकते, अशुद्ध जल ग्रहण करना हमारी विवशता है। पवित्र भूमि हमारे लिए कहीं सुरक्षित नहीं है। निर्बाध आकाश की परिकल्पना अब सहज नहीं है। चारों तरफ विकृति ही विकृति है।

कर्मादान : कर्म अथवा चेतना

जैन धर्म में श्रावक व्रत के अंतर्गत 'उपभोग-परिभोग' व्रत का विधान है। 'कर्मादान' इस व्रत के अतिचार हैं। ये जीविकोपार्जन के निंद्य साधन हैं। इनकी कुल

संख्या १५ है, यथा-अंगारकर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटककर्म, स्फोटकर्म, दंत-वाणिज्य, लाक्षाकर्म, रसवाणिज्य, केश-वाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्र-पिण्ड, निर्लांक्षन कर्म, दावाग्निदापन, सुह्रदशोषण, असतिपोषण। ये सभी हिंसा से युक्त हैं, मानव मन को विकृत करते हैं। मनुष्य को स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित एवं अपकारी बनाते हैं। मनुष्य की चेतना 'स्व' के प्रति जागृत होती है। 'पर' का भाव इनके कारण मानव-मन में उत्पन्न ही नहीं हो पाता है। अतः व्यक्ति 'परोपकार' की भावना से पूर्णतः विरत रहता है।

'कर्मादान' के प्रत्येक कर्म पर्यावरण के असंख्य घटक का विनाश करते हैं। ये मानव-चेतना को विकृत करने के साथ-साथ पर्यावरण-प्रदूषण के कारण भी हैं। अंगारकर्म का अर्थ लकड़ी जलाकर कोयला बनाना है, वहीं वनकर्म के द्वारा वन का विनाश किया जाता है। शकटकर्म सवारी ढोने के वाहन से संबंधित है, जबकि भाटक कर्म के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के पशुओं को भाड़े पर उठाया जाता है। स्फोटकर्म विस्फोटक (explosive) से संबंधित है। हाथी दांत का व्यवसाय दंत-वाणिज्य कहलाता है। लाख का व्यापार लाक्षाकर्म है। मदिरा एवं मादक-पदार्थों का व्यापार रस-वाणिज्य है। द्विपद-चतुष्पद, दास-दासियों का व्यवसाय केश वाणिज्य है। विष-वाणिज्य हिंसक अस्त्र-शस्त्रों से संबंधित है। तेलादि का व्यापार यंत्रपिण्ड है। पशुओं को नपुंसक बनाना निर्लांछन कर्म है। वन में आग लगाना दावाग्निदापन है, जबकि तालाब, पोखरादि को सुखाना सुह्रदशोषण है। व्यभिचार, देह व्यापार तथा इसी तरह के अन्य कर्म असतिपोषण है। ये सभी मात्र कर्म नहीं वरन् मानव मन में उठने वाली सक्रिय चेतना भी हैं, क्योंकि चेतनारहित होकर कोई कर्म संभव नहीं है। जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित 'कर्मादान' की भावना को समझकर इस पर अमल करना आज की जरूरत है।

कर्मादान कितना प्रासंगिक ?

'कर्मादान' के अंतर्गत विवेचित निंद्य कर्मों का अवलोकन आज के परिप्रेक्ष्य में करना प्रारंभ करें तो मनुष्य विकट संकट से घिर जाएगा। वह आज कोई भी कर्म अपनाए किसी न किसी रूप में कर्मादान की परिधि में आ जाएगा। जीवन जीना भी आवश्यक है। जीवन चलाने के लिए आजीविका अपरिहार्य है। आजीविका के लिए व्यवसाय को स्वीकार करना नितांत अनिवार्य है। इस परिप्रेक्ष्य में मात्र यही कहा जा सकता है हम व्यावसायिक बनें, युगानुकूल आवश्यकता को निःसंदेह स्वीकार करें

शेष पृष्ठ २७ पर..

सण्णाः मूलवृत्तियों की जैन अवधारणा

- डॉ० ऋषभचन्द्र जैन

"मूलवृत्ति" शब्द मनोविज्ञान का पारिभाषिक शब्द है, जो अंग्रेजी के Instinct का हिन्दी रूपान्तर है। मनोविज्ञान ने "मूलवृत्ति" को एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धांत के प्रवर्तक-मेकडूगल माने जाते हैं। उन्होंने मूल-वृत्तियों की संख्या १४ मानी है--। १. भोजन ढूंढ़ना २. भागना ३. लड़ना ४. उत्सुकता ५. रचना ६. संग्रह ७. विकर्षण ८. समर्पण ९. काम १०. वात्सल्य ११. सामाजिकता १२. आत्मप्रकाशन १३. विनीतता और १४. हंसना।[१] प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने मूलवृत्तियों को मूलतः चार भागों में विभाजित किया है-- १. पोषण सम्बन्धी-संग्रहशीलता, मृगया, भोजनान्वेषण, भोजन आदि; २. वंशपरम्परा सम्बन्धी-प्रणय, मैथुन, सन्तति पालन आदि; ३. आत्मरक्षा सम्बन्धी- पलायन, गोपन, लज्जा, विनीतता, गृहनिर्माण, रचना, युयुत्सा, स्वत्वस्थापना आदि; और ४. समाज सम्बन्धी- सामाजिकता, सहानुभूति, हास, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्द्धा आदि। ये वृत्तियाँ किसी न किसी संवेग से सम्बन्धित हैं।[२]

वैदिक परम्परा में मनुष्य और पशु की तुलना करते हुए कहा गया है कि आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार क्रियाएं दोनों में समानरूप से पायी जाती हैं। मनुष्य में धर्म भी होता है, यह उसकी विशेषता है, क्योंकि धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान होता है।[३] बौद्ध परम्परा में भवतृष्णा, कामतृष्णा और विभवतृष्णा के रूप में उक्त विषय को देखा जा सकता है। जैन परम्परा में उक्त विषय को संज्ञा (**सण्णा**) कहा गया है।

जैन आगमों में 'संज्ञा' शब्द का प्रयोग नाम, ज्ञान, इच्छा, मूलवृत्ति आदि अर्थों में हुआ है, जिसे हम **आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, प्रज्ञापना, आवश्यक, षट्खण्डागम, धवला, गोम्मटसार जीवकाण्ड, पंचसंग्रह प्राकृत, पंचसंग्रह संस्कृत, तत्वार्थसार** आदि ग्रन्थों एवं उनकी टीकाओं में देख सकते हैं। अनेक ग्रन्थों में संज्ञाओं का विवेचन भी उपलब्ध है। संज्ञा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जिनसे संक्लेषित होकर जीव इस लोक में और जिनके विषय का सेवन करके दोनों ही भवों/लोकों (इहलोक और परलोक) में दारुण दुःख को प्राप्त

होता है, उनको संज्ञा कहते हैं अथवा नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं।[४] श्री ज्ञानमुनि जी महाराज ने संज्ञा शब्द के दो अर्थ बतलाये हैं--(१) संज्ञान (अभिलाषा, रुचि, वृत्ति या प्रवृत्ति) अर्थात् आभोग (झुकाव, रुझान, ग्रहण करने की इच्छा) संज्ञा है। (**संज्ञानं संज्ञा**) **सर्वार्थ-सिद्धि,** १/१३ और (२) जीव जिस-जिसके निमित्त से भली-भांति जाना-पहचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते हैं।[५] कर्म सिद्धांत के आलोक में "वेदनीय" और "मोहनीय कर्म" के "उदय" और "उदीरणा" से तथा "ज्ञानावरणीय" और "दर्शनावरणीय कर्म" के क्षयोपशम से आहारादि प्राप्त करने की अभिलाषा, रुचि या मनोवृत्तिरूप जो क्रिया होती है, उसे संज्ञा कहते हैं।

जैन ग्रन्थकारों ने संज्ञा के चार, दश और सोलह भेद किये हैं। **स्थानांग, समवायांग, भगवती, आवश्यक, आवश्यक-निर्युक्ति, धवला, गोम्मटसार जीवकाण्ड, पंचसंग्रह (प्राकृत एवं संस्कृत), नियमसार तात्पर्यवृत्ति, तत्वार्थसार** आदि ग्रन्थों में संज्ञा के चार भेद बतलाये हैं --१. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. मैथुनसंज्ञा और ४. परिग्रहसंज्ञा। **धवला** में एक क्षीणसंज्ञा भी कही है (**खीणसण्णा वि अत्थि**) [६]। यहाँ उक्त चारों संज्ञाओं के अभाव को क्षीणसंज्ञा कहा गया है। **स्थानांग, प्रज्ञापना** और **भगवती** में संज्ञा के दश प्रकार मिलते हैं - १. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. मैथुनसंज्ञा, ४. परिग्रहसंज्ञा ५. क्रोधसंज्ञा, ६. मानसंज्ञा ७. मायासंज्ञा ८. लोभसंज्ञा ९. लोकसंज्ञा और १०. ओघ संज्ञा।[७] **आचारांग निर्युक्ति** में मूलतः संज्ञा के द्रव्य और भावरूप दो भेद किये हैं। [८] सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से द्रव्यसंज्ञा के तीन प्रकार हैं। ज्ञान और अनुभव के भेद से भावसंज्ञा के दो प्रकार हैं। ज्ञानसंज्ञा के मतिश्रुत आदि पांच भेद हैं। अनुभव संज्ञा (**अनुभवणाकम्मसंजुत्ता, आचारांगनिर्युक्ति**-३९) के सोलह भेद बतलाये हैं- १. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. परिग्रहसंज्ञा, ४. मैथुनसंज्ञा, ५. सुखसंज्ञा, ६. दुःखसंज्ञा, ७. मोहसंज्ञा, ८. विचिकित्सासंज्ञा, ९. क्रोध संज्ञा, १०. मान संज्ञा, ११. मायासंज्ञा, १२. लोभसंज्ञा, १३. शोकसंज्ञा, १४. लोकसंज्ञा, १५. धर्मसंज्ञा और १६. ओघ संज्ञा।

आहारसंज्ञा- (Food-seeking instinct)

पेट खाली होने से, क्षुधावेदनीय कर्म के "उदय" से, आहार सम्बन्धी बातें सुनने से उत्पन्न होने वाली बुद्धि से और तत्सम्बन्धी उपयोग-चिन्तन करने से आहारसंज्ञा

उत्पन्न होती है।[९] अन्तरंग में असातावेदनीय कर्म की "उदीरणा' से तथा बहिरंग में आहार को देखने से, उस ओर उपयोग जाने से और पेट खाली होने से जीव को जो आहार की इच्छा होती है, उसे आहारसंज्ञा कहते हैं।[१०] **आचारांगनिर्युक्ति की टीका** (गाथा-३९) में तैजसशरीर नामकर्म और असातावेदनीय कर्म के उदय को आहारसंज्ञा का कारण बताया है। इसकी तीव्रता देवताओं में सबसे कम और तिर्यंचों में सबसे अधिक पायी जाती है।[११] यह संज्ञा पहले से छठवें गुणस्थान तक रहती है।

भयसंज्ञा- (Instinct of fear or flight)

शक्ति की हीनता, भयवेदनीय कर्म का उदय, भय की बात सुनने आदि से उत्पन्न बुद्धि और भय के विषय में सोच-विचाररूप उपयोग भयसंज्ञा का कारण है।[१२] अत्यन्त भयंकर पदार्थ को देखने से अथवा पहले देखे हुए भयंकर पदार्थ के स्मरण आदि से, शक्ति के हीन होने पर और भयकर्म की उदीरणा होने पर भयसंज्ञा होती है।[१३] अंतरंग में भय नोकषाय की उदीरणा होने से तथा बहिरंग में अत्यन्त भयंकर वस्तु देखने से और उस ओर उपयोग (ध्यान) जाने से शक्तिहीन प्राणी को जो भय उत्पन्न होता है, उसे भयसंज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा आठवें गुणस्थान तक होती है।[१४] **आचारांगनिर्युक्ति टीका** में मोहनीयकर्म के उदय को भयसंज्ञा का कारण बतलाया है।[१५] भयमोहनीयकर्म के उदय से भयभीत प्राणी के नेत्र, मुख में विकारोत्पत्ति, शरीर में रोमांच, कंपन, घबराहट आदि मनोवृत्तिरूप क्रिया होती है।[१६] मनुष्यों में भयसंज्ञा सबसे कम होती है तथा नारकियों में सबसे अधिक होती है, क्योंकि उनमें मृत्युपर्यन्त लगातार भय बना रहता है।[१७]

मैथुनसंज्ञा- (Instinct of sex or sex drive)

शरीर में अधिक मांस, रक्त, वीर्य का संचय होने से, मोहनीय कर्म के उदय से, मैथुन की बात सुनने से तथा मैथुन में उपयोग लगाने से मैथुन संज्ञा होती है।[१८] स्वादिष्ट और गरिष्ठ रसयुक्त भोजन करने से, पहले भोगे हुए विषयों का स्मरण करने से, कुशील का सेवन करने से और वेदकर्म की उदीरणा आदि से मैथुनसंज्ञा होती है।[१९] अन्तरंग में वेद नोकषाय की उदीरणा होने से तथा बहिरंग में कामोत्तेजक गरिष्ठ रसयुक्त भोजन करने से, मैथुन की ओर उपयोग जाने तथा कुशील मनुष्यों

की संगति करने से जो मैथुन की इच्छा होती है, उसे मैथुनसंज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा नवमगुणस्थान के पूर्वार्ध तक होती है।[२०] पुरुषवेद (मोहनीयकर्म) के उदय से स्त्री-प्राप्ति की अभिलाषारूप क्रिया, स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-प्राप्ति की अभिलाषारूप क्रिया तथा नपुंसकवेद के उदय से दोनों की प्राप्ति की अभिलाषारूप क्रिया मैथुनसंज्ञा कहलाती है।[२१] **आचारांगनिर्युक्ति टीका** के अनुसार मोहनीयकर्म के उदय से मैथुनसंज्ञा होती है।[२२] नारकियों में सबसे कम मैथुनसंज्ञा होती है। मनुष्यों में सबसे अधिक मैथुनसंज्ञा होती है, क्योंकि उनमें इसका सद्भाव बहुत समय तक बना रहता है।[२३]

परिग्रहसंज्ञा-(Instinct of appropriation)

परिग्रह का त्याग न होने से, (लोभ) वेदनीयकर्म का उच्च होने से, परिग्रह को देखने से उत्पन्न होने वाली बुद्धि से तथा परिग्रह के विषय में विचार करते रहने से परिग्रहसंज्ञा होती है।[२४] इत्र, भोजन, उत्तम वस्त्र, स्त्री आदि भोगोपभोग के साधनभूत पदार्थों को देखने से, पहले भुक्त पदार्थों का स्मरण करने से, परिग्रह में ममत्व बुद्धि से तथा लोभकर्म की उदीरणा होने पर परिग्रहसंज्ञा होती है।[२५] अन्तरंग में लोभकषाय की उदीरणा होने से तथा बहिरंग में उपकरणों को देखने से, परिग्रह की ओर उपयोग जाने से और मूर्च्छाभाव होने से परिग्रह की इच्छा होना, परिग्रहसंज्ञा है। यह संज्ञा दशवें गुणस्थान तक होती है।[२६] लोभमोहनीयकर्म के उदय से संसार के कारण-भूत सचित्ताचित्त पदार्थों के प्रति आसक्तिपूर्वक उन्हें ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया को परिग्रहसंज्ञा कहते हैं।[२७] तिर्यंचों में परिग्रहसंज्ञा सबसे कम होती है तथा देवों में सबसे अधिक पायी जाती है, क्योंकि सोना और रत्नों में उनकी सदा आसक्ति बनी रहती है।[२८]

क्रोधसंज्ञा- (Instinct of anger)

क्रोधमोहनीय कर्म के उदय से प्राणी के मुख, शरीर में विकृति होना, नेत्र लाल होना तथा ओठ फड़कना आदि क्रोधवृत्ति के अनुरूप चेष्टा करना, क्रोधसंज्ञा है।

मानसंज्ञा- (Instinct of pride)

मानमोहनीय कर्म के उदय से अहंकार, दर्प, गर्व आदि के रूप में जीव की परिणति को मानसंज्ञा कहते हैं।

मायासंज्ञा- (Instinct of deceit)

मायामोहनीय कर्म के उदय से अशुभ-अध्यवसायपूर्वक मिथ्याभाषण आदि रूप कुटिल वाग्व्यापार की प्रवृति को मायासंज्ञा कहते हैं।

लोभसंज्ञा-(Instinct of greed)

लोभमोहनीय कर्म के उदय से सचित्त-अचित्त पदार्थों को प्राप्त करने की लालसा लोभसंज्ञा है।

लोकसंज्ञा- (Instinct of universe)

१. अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण त्याज्य होने पर भी लोकरूढ़ियों का अनुसरण करने की अभिलाषा को लोकसंज्ञा जानना चाहिए। २. मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के रूचिकर और सुन्दर पदार्थों को या लोक प्रचलित शब्दों के अनुकूल पदार्थों को विशेषरूप से जानने की तीव्र अभिलाषा लोकसंज्ञा है। सामान्य अवबोधरूप क्रिया या दर्शनोनयोग तथा लोकदृष्टि भी लोकसंज्ञा ही है। **आचारांगनिर्युक्ति टीका** में लोकसंज्ञा का कारण मोहनीयकर्म का उदय और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम बताया गया है।

ओघसंज्ञा- (Instinct of ogha)

१. बिना सोचे-विचारे किसी कार्य को करने की धुन या सनक को ओघसंज्ञा कहते हैं। जैसे-प्रयोजन के बिना ही बैठे-बैठे पैर हिलाना आदि। २. मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों या लोकप्रचलित शब्दों के अनुरूप पदार्थों को सामान्यरूप से जानने की अभिलाषा ओघसंज्ञा है। विशेष अवबोधरूप क्रिया या ज्ञानोपयोग भी ओघसंज्ञा है। स्पर्श-रसादि के विभाग के बिना जो साधारण ज्ञान होता है, वह ओघसंज्ञा है। भूकम्प आदि आपदाओं के आने के पूर्व ही ओघसंज्ञा से उसका आभास पाकर अनेक पशु-पक्षी सुरक्षित स्थानों को चले जाते हैं।

सुखसंज्ञा- (Instinct of pleasure)

सातावेदनीय कर्म के उदय से होने वाले सुखरूप अनुभव को सुखसंज्ञा कहते हैं।

दुःखसंज्ञा- (Instinct of pain)

असातावेदनीय कर्म के उदय से जो दुःखरूप अनुभव होता है, उसे दुःखसंज्ञा कहते हैं।

मोहसंज्ञा- (Instinct of delusion)

मोहनीय कर्म के उदय से होने वाली मिथ्यादर्शनरूप विपरीत-वृत्ति मोहसंज्ञा कहलाती है।

विचिकित्सासंज्ञा- (Instinct of suspense/ disgust)

ज्ञानावरणीय और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाली चित्तविलुप्तिरूप स्थिति विचिकित्सासंज्ञा है।

शोकसंज्ञा-(Instinct of sorrow)

मोहनीयकर्म के उदय से होने वाली विप्रलाप और वैमनस्यरूप स्थिति शोकसंज्ञा है।

धर्मसंज्ञा- (Instinct of religion)

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से क्षमा आदि धर्मों के सेवनरूप वृत्ति धर्मसंज्ञा है।

उपर्युक्त संज्ञाएं स्थावर एकेन्द्रिय (पृथिवी, जल, तेज, वायु और वनस्पति) जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक के सभी जीवों में हीनाधिकरूप में प्राप्त होती हैं। मूलतः चार संज्ञाओं में ही सभी सोलह संज्ञाएं समाहित हो जाती हैं। इसलिए आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चारों का ही विशेष विवेचन शास्त्रकारों ने किया है।

मनुष्यों में सबसे कम मनुष्य भयसंज्ञा वाले होते हैं, क्योंकि वह अल्प समय तक कुछ ही मनुष्यों में रहती है। इससे अधिक संख्या आहारसंज्ञा वाले मनुष्यों की होती है, क्योंकि आहार की इच्छा अधिक समय तक अधिक मनुष्यों में बनी रहती है। उनसे अधिक परिग्रहसंज्ञा वाले मनुष्य होते हैं, क्योंकि मनुष्य आहार छोड़कर परिग्रह के पीछे दौड़ते हुए अकसर देखा जाता है तथा उसका चिन्तन भी अधिक करता है। सबसे अधिक मनुष्य मैथुनसंज्ञा वाले होते हैं, क्योंकि मैथुन के लिए मनुष्य अपना आहार, परिग्रह आदि सब कुछ दांव पर लगा देता है और निरन्तर उसी के चिन्तन में लगा रहता है।[२९]

देवताओं में सबसे कम आहार संज्ञा तथा सबसे अधिक परिग्रह संज्ञा होती है। तिर्यंचों में सबसे कम परिग्रहसंज्ञा और सबसे अधिक आहारसंज्ञा पायी जाती है। नारकियों में सबसे कम मैथुनसंज्ञा तथा सबसे अधिक भयसंज्ञा होती हैं, क्योंकि वे निरन्तर भयग्रस्त रहते हैं।[३०] उपर्युक्त संज्ञाओं का समीचीनरूप से अध्ययन कर मनुष्यों के व्यवहार, मनोवृत्तियों, आचार आदि का पता लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ-

१. **मानविकी परिभाषा कोश, मनोविज्ञान खण्ड,** सम्पादक-डॉ. पद्मा अग्रवाल,

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् १९६८, पृ. १४९-५०
२. **अभिनव मनोविज्ञानम्**-ले. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, प्रकाशक-सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९६५,पृ. १५१
३. आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनः पशुभिः समानाः।।
४. **गोम्मटसार जीवकाण्ड**-१३३ एवं ६५९, **पंचसंग्रह प्राकृत**-१/५१ तथा **पंचसंग्रह संस्कृत**-१/३४४ (**जैनेन्द्र सिद्धांत कोश**)
५. **प्रज्ञापनासूत्र,** ८/७२५ का विवेचन। आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर, १९८३
६. **धवला**, २/१/१/४१३, ४१९
७. **ठाणं**-१०/१०५-६, **पण्णवण्णा**-८/१, भगवई-७/१६१
८. **आचारांगनिर्युक्ति**, गाथा-३८, ३९ (**राजेन्द्र अभिधान कोश**, भाग-७, पृ. ३०१)
९. चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा-ओमकोट्ठताए,
छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।। -**ठाणं** ४/५७९
१०. आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु।। **गो.जी.**-१३४
तुलना-**पंचसंग्रह (प्रा.),** १/५२ तथा **पंचसंग्रह (सं.),** १/३४८
११ **पण्णवणा**-८/७, ११, जैन विश्व भारती लाडनूं (राज.)
१२. चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा,-हीणसत्तताए,
भयवेणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोओगेणं।। -**ठाणं**-४/५८०
१३. अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायेदे चदुहिं।। **गो.जी.**-१३५
तुलना-**पंचसंग्रह (प्रा.)** १/५३, **पंचसंग्रह (सं.)** १/३४९
१४. **तत्वार्थसार,** २/३६ का भावार्थ, पृ. ४६ वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, वाराणसी
१५. **आचारांगनिर्युक्ति टीका**, गाथा-३९
१६. **पण्णवणा**-८/७२५ का विवेचन।
१७. वही, ८/५, ६
१८. चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णाा समुप्पज्जति, तं
जहा-चित्तमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए,
तदट्ठोवओगेणं।। -**ठाणं**-४/५८१
१९. पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए।

वेदस्सुदीरणाए मेहुण सण्णा हवदि एवं।**गो.जी.**-१३६

तुलना-**पंचसंग्रह (प्रा.)** १/५४ एवं **पंचसंग्रह (सं.)** १/३५०

२०. **तत्वार्थसार** २/३६ का भावार्थ, पृ. ४६

२१. **पण्णवणासुत्त**, ८/७२५ का विवेचन।

२२. **आचारांगनिर्युक्तिटीका**, गाथा-३९

२३. **पण्णवणा**-८/५, ६

२४. चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा-अविमुत्तियाए,
लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए,
तदट्ठोवअओगेणं।।-**ठाणं**-४/५८२

२५. उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा।**गो.जी.**-१३७
तुलना-**पंचसंग्रह (प्रा.)**, १/५५, तथा **पंचसंग्रह (सं.)** -१/३५१

२६. **तत्वार्थसार**, २/३६ का भावार्थ, पृ. ४६

२७. **पण्णवणासुत्त**, ८/७२५ का विवेचन तथा आचारांगनिर्युक्ति टीका, **गाथा-३९**

२८. **पण्णवणा**-८/७, ११

२९. वही, ८/८, ६

३०. वही, **सण्णापदं।**

-व्याख्याता, प्राकृत एवं जैनशास्त्र,
प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली (बिहार)

शेष पृष्ठ १९ का...

और इसके अनुरूप जीवन-यापन करें, लेकिन अपनी आवश्यकता को सीमित भी रखें। क्योंकि प्रकृति ने हमें सब कुछ प्रदान किया है-सम्यक् उपयोग के लिए, दुरुपयोग के लिए नहीं।

संभवतः 'कर्मादान' के पीछे जैनाचार्यों का यही मंतव्य रहा हो। आज भी अगर व्यक्ति 'कर्मादान' की इस भावना को अपना ले तो संसार में परिव्याप्त अनेक समस्याओं का समाधान स्वयमेव हो जाए। यही 'कर्मादान' का आधुनिक समय के लिए संदेश माना जा सकता है।

- रीडर एवं अध्यक्ष, अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र,
रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

संस्कृत चम्पू काव्य परम्परा में पुरुदेव चम्पू का वैशिष्ट्य

- कु. रेखा जैन, शोधछात्रा

संस्कृत रचना शैलियाँ

संस्कृत रचनाओं की अनेक शैलियां और विधाएं हैं जैसे काव्य, नाटक, चरित, पुराण, कथा, आख्यायिका, स्तोत्र, गीत तथा मुक्तक आदि। इन सबका तीन वर्गों में विभाजन किया जाता है-गद्य, पद्य और चम्पू। चम्पू शैली प्राचीनतम ब्राह्मणों में पायी जाती है। उदाहरणार्थ, **ऐतरेय ब्राह्मण** की **शुनः शेष कथा** गद्य में रचित होने पर भी उसमें एक सौ से अधिक पद्यात्मक गाथाएं आयी हैं। इस शैली का प्रयोग पालि भाषा की **जातक कथाओं** में और तत्पश्चात् **पंचतन्त्र**, **हितोपदेश** जैसी रचनाओं में बहुलता से हुआ। नाटक में भी गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग हुआ। किन्तु यहाँ गद्य और पद्य का अपना-अपना विशिष्ट स्थान बन गया।

जब पद्य व गद्य रचनाओं में कलात्मकता की मात्रा बढ़ी, तब उनके क्षेत्र का बंटवारा नियत न रह सका। अश्वघोष और कालिदास से प्रारम्भ होकर भारवि, माघ और श्रीहर्ष तक महाकाव्य शैली ने अर्थ-गाम्भीर्य के साथ छन्द, रस, भाव, अलंकार आदि में अति कृत्रिम रूप से विकास किया। गद्य रचना भी पीछे न रही और सुबन्धु तथा बाण-ने उसे भी इतना पुष्ट और कलात्मक बना दिया कि उसे भी महाकाव्य के समकक्ष स्थान प्राप्त हो गया। उक्त रचयिताओं का कौशल दो में से किसी एक ही क्षेत्र में पाया जाता है, पद्य या गद्य। ऐसी प्रतिभाओं का उदित होना भी स्वाभाविक था जो एक ही कृति में अपने गद्य और पद्य दोनों प्रकार के रचना-कौशल की अभिव्यक्ति करना चाहें। ऐसी रचनाएं 'चम्पू' के रूप में सम्मुख आयीं।

'चम्पू' शब्द की व्युत्पत्ति और उसका स्वरूप

संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'चम्पू' शब्द-की व्युत्पत्ति इस प्रकार है-यह शब्द चुरादिगण की गत्यर्थक चपि (चम्पू) धातु से औणादिक उन् प्रत्यय करने पर और ऊङ् आदेश करने पर बनता है। 'चम्पयति' अर्थात् **सहैव गमयति प्रयोजयति गद्यपद्ये इति चम्पूः** अर्थात् जिस रचना में गद्य और पद्य का समान भाव से तथा सहयोगपूर्वक

प्रयोग किया जाता है उसे चम्पू कहते हैं। श्री हरिदास भट्टाचार्य ने चम्पू शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है:- **चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति 'चम्पूः'।** इसके अनुसार चम्पू में शब्द-चमत्कार और अर्थ प्रसाद गुण युक्त होना चाहिए। चम्पू में वर्णनात्मक अंश के लिए गद्य का प्रयोग होता है और अर्थगौरव वाले अंशों के लिए पद्य का प्रयोग किया जाता है। सातवी शती ईस्वी के लगभग दण्डी ने अपने **काव्यादर्श** में चम्पू की परिभाषा **गद्य-पद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते** की है अर्थात् ऐसी कोई विशेष रचना जो गद्य और पद्यमय हो चम्पू कहलाती है। किन्तु जो चम्पू रचनाएं उपलब्ध हैं वे दशवीं शती ईस्वी से पूर्व की कोई नहीं है। इस कोटि की उपलब्ध रचनाओं में सर्वप्रथम रचना त्रिविक्रम भट्ट का **नलचम्पू** और दूसरी रचना आ. सोमदेव सूरि का **यशस्तिलकचम्पू** है। इसी श्रृंखला में तेरहवीं शती ईस्वी में कविवर अर्हदास ने जिनसेनाचार्य के **आदिपुराण** में वर्णित प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभदेव) के कथानक पर आधारित **'पुरुदेव-चम्पू'** का प्रणयन किया था।

पुरुदेव चम्पू

'पुरुदेव चम्पू' संस्कृत साहित्य के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह एक उत्कृष्ट चम्पू-काव्य है। पद्य रचना में यह काव्य महाकवि भारवि और माघ तथा गद्य में सुबन्धु और बाणभट्ट की कृतियों से तुलनीय है। **'पुरूदेव चम्पू'** में दश स्तबक हैं। स्तबक शब्द संस्कृत की स्तु धातु से वुन् प्रत्यय या स्था धातु से अबक् प्रत्यय जोड़कर बनता है जिसका अर्थ है गुच्छा या झुण्ड। प्रारम्भिक तीन स्तबकों में पुरुदेव भगवान् आदिनाथ (ऋषभदेव) के पूर्व-भवों का वर्णन किया गया है। शेष स्तबकों में भगवान् आदिनाथ और उनके पुत्र भरत तथा बाहुबली का चरित्र चित्रण मनोरम काव्य शैली में किया गया है।

कथावस्तु की दृष्टि से यह काव्य विशेष महत्वपूर्ण है। पुरुदेव का जीवन अत्यंत रोचक एवं उपदेशप्रद है। पुरुदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती तथा बाहुबली का जीवन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का उज्ज्वल निदर्शन है। इन्हीं भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। जैसा कि **मार्कण्डेय, कूर्म, अग्नि, वायु, ब्रह्माण्ड, वराह, लिंग, विष्णु तथा स्कन्द-इन नौ पुराणों में** उल्लिखित है।

पुरुदेव चम्पू का वैशिष्ट्य

बाहुबली की तपस्या भारतीय मूर्तिकला के लिए अदम्य प्रेरणा स्रोत रही है। अतः हम कह सकते हैं कि **पुरुदेव चम्पू** न केवल काव्य की दृष्टि से प्रत्युत भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

महाकवि अर्हदास की नयी-नयी परिकल्पनाओं तथा रूपक, विरोधाभास, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, असंगति, उपमा, परिसंख्या, व्यतिरेक, अनन्वय, श्लिष्टोपमा आदि अलंकारों के पुट ने इस चम्पू के गौरव में चार चाँद लगा दिये हैं। इस चम्पू के कितने ही श्लेष तो इतने कौतुकावह हैं कि इनका अन्यत्र मिलना असम्भव-सा है। उदाहरणार्थ-अलका नगरी के वर्णन में श्लेष का चमत्कार देखिए-

"या खलु धनश्री-सम्पन्ना निभृतसामोदसुमनोऽभिरामा, सकलसुदृग्भिः शिरसा शलाह्यमान् अलकाभिधानमर्हति।"

सुमेरु के वर्णन में रूपक और श्लिष्टोपमा का चमत्कार कितना सुखद है, उदाहरणार्थ-

"त्रिदशोपसेवितो यः प्राज्यविराजितरुचिर्महामेरुः।
लक्ष्मीविलासगेहे जम्बूद्वीपे विभाति दीप इव।।"

अहमिन्द्र के वर्णन में विरोधाभास और व्यतिरेक सम्मिश्रण तथा अयोध्यानगरी के वर्णन में अनन्वय, श्लेष, विरोध और व्यतिरेक को किस खूबी के साथ एक साथ बैठाया है यह देख कवि की प्रतिभा पर आश्चर्य होता है।

'पुरुदेव चम्पू' में प्रायः सभी प्रचलित एवं अप्रचलित छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'रस के अनुरूप छन्द का प्रयोग काव्य की शोभा बढ़ा देता है अतः कवि ने रस के अनुरूप ही अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, भुजंगप्रयात, मंजुभाषिणी, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, रथोद्धता, वंशस्थ, वसन्ततिलका, वियोगिनी, मालभारिणी, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा, स्वागता, हरिणी आदि सभी छन्दों का प्रयोग किया है।

पुरुदेव चम्पू का प्रत्येक भाग सरस और चुटीला है। ज्यों-ज्यों ग्रन्थ आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसकी भाषा और भाव में प्रौढ़ता आती जाती है। इस ग्रन्थ की ललित अलंकृत भाषा सहज ही पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

भगवान आदिनाथ और सम्राट भरत इतने अधिक प्रभावशाली पुण्य पुरुष हुए हैं कि उनका जैन ग्रन्थों में तो उल्लेख आया ही है उसके अतिरिक्त वेद के मन्त्रों तथा उपनिषदों और जैनेतर पुराणों आदि में भी उल्लेख मिलता है। **श्रीमद् भागवत् पुराण** में भी मरुदेवी, नाभिराय, आदिनाथ और उनके पुत्र भरत का विस्तृत विवरण दिया गया है।

शेष पृष्ठ ३३ पर....

इतिहास बनता जैन इतिहास

- इंजी. नीलम कान्त जैन

'श्रमण-परम्परा' में आत्मकल्याण ही सर्वोपरि लक्ष्य रहा है। अतः अध्यात्म-विद्या के महान ग्रंथराजों की रचना समय-समय पर आचार्यों ने की। जितने अन्य विद्वान भी जैन परम्परा में हुये हैं, उनकी रचनायें 'अध्यात्म-रहस्य' विषयक ज्यादा रही हैं। अन्य विधाओं में जो भी रचनायें/साहित्य सृजन हुआ है, मूलधारा मानव को अपना कल्याण करने हेतु प्रेरित करने की रही है तथा सांसारिक जीवन नीतिपूर्वक एवं धार्मिक-पथ पर चलकर जीने को निवेदित करती रही है। अध्यात्म, नीति, काव्य, पुराण, चिकित्सा, नाटक, राजनीति, कथा-कहानी, भक्ति-वंदना इत्यादि से संबंधित विशाल साहित्य की रचना में अगर कोई क्षेत्र उपेक्षित रह गया है तो वह है 'जैन इतिहास'। जैनों ने इतिहास की तरफ से उदासीनता ही दिखाई। प्रायः जितने भी इतिहासकार हुये, सब जैनेतर थे। उन्होंने इतिहास-लेखन में तटस्थ भाव, कम से कम जैनों के प्रति, तो नहीं रखा। कुछ जानकारी के अभाव में और कुछ जानबूझकर। जैन धर्म वैदिक/ब्राह्मण धर्म का प्रबल प्रतिद्वंदी रहा। अतः जैनेतर इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के प्रणयन में जैन धर्म, जैनों की गौरवशाली परम्परा तथा संस्कृति और देश के इतिहास में जैनों के महान योगदान की उपेक्षा की। इतिहास की किसी भी महान माने जाने वाली पुस्तक का अवलोकन कर लीजिये, यही स्थिति सामने आयेगी। प्रयास प्रायः यही किया गया कि किसी तरह यह सिद्ध होता चले कि जैनधर्म हिन्दू धर्म की ही एक शाखा है और जैन हिन्दुओं के ही हिस्से हैं। तथाकथित इतिहासकारों ने स्वयं कुछ लिखा नहीं तथा जैनों के द्वारा उपलब्ध प्रमाणों को मिथकीय कल्पना बताकर सिरे से ही खारिज कर दिया। भगवान महावीर के पहले की श्रमण परम्परा को कभी स्वीकार नहीं किया गया। वह तो भला हो कुछ जर्मन विद्वानों का जिन्होंने स्वतंत्र खोजों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि न तो 'जैनधर्म' बौद्ध-धर्म की शाखा है और न ही महावीर 'जैन-धर्म' के संस्थापक हैं।

ऐसे विद्वानों में डॉ. हर्मन जैकोबी एवं डॉ. विण्टरनिट्ज का नाम सर्वोपरि है। आश्चर्य की बात है कि इन विद्वानों का इतना महान योगदान जैन-इतिहास को स्थापित करने में रहा तब भी किसी मंदिर में, पुस्तकालय में कहीं भी कोई ग्रंथ इन विद्वानों का देखने को नहीं मिलेगा। लाखों रुपये पंचकल्याणकों के नाम पर

शोभायात्रा/जलसे/जलूसों पर खर्च हो जायेंगे पर कुछ हजार रुपये उन इतिहास ग्रंथों के अनुवाद व प्रकाशन पर खर्च नहीं किये जा सकते। जैन विद्वानों में २०वीं सदी में जो महा-मनीषी हुये हैं, उनमें डॉ. ज्योति प्रसाद जैन एवं डॉ. कामता प्रसाद जैन का नाम प्रथम कोटि में आता है जिन्होंने कि जैन इतिहास को अपने अन्वेषण का विषय चुना। पिछले दो हजार सालों में जितने भी ऐतिहासिक पुरुष-महिलायें हुई हैं, उनका विवरण निकालना कितना श्रम-साध्य कार्य है, इसकी कल्पना की जा सकती है। पर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने यह कष्टसाध्य कार्य किया और जैन इतिहास पर अनमोल ग्रंथों की रचना की। उनकी पुस्तकें पढ़कर ही मुझे अपने गौरवशाली अतीत और शौर्यपूर्ण परम्परा का ज्ञान हुआ। बड़े खेद का विषय है कि पूजा-पाठ को ही जिनवाणी मानने वाला जैन समाज इन सब अन्वेषणों की जानकारी से अछूता रहा। क्या हमारी संस्कृति रही और क्या हमारा भारतीय सस्कृति के उत्थान में योगदान रहा, हमें पता ही नहीं। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ग्रंथ, जो कि प्रत्येक घर में और प्रत्येक मंदिर में होने चाहिये थे ताकि हम अपने पूर्वजों को और उनकी यशोगाथाओं को स्मरण करते रहें, शायद ही किसी मंदिर में मिल पायें। सिर्फ बुद्धिजीवियों/विद्वानों तक सीमित है उनकी उपलब्धता। अगर डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने इतना श्रम नहीं किया होता तो हमें उन इतिहास पुरुषों की जानकारी ही नहीं मिलती।

जैन-इतिहास की जानकारी के साधन-स्रोत शिलालेख, ताम्रलेख, मूर्ति-प्रशस्ति लेख, ताड़पत्र लेख इत्यादि धीमे-धीमे नष्ट होते जा रहे हैं। नष्ट किये जा रहे हैं। उपेक्षित किये जा रहे हैं। वर्तमान में कोई विद्वान ऐसा दृष्टिगत नहीं हो रहा है जिसकी जैन इतिहास में रुचि हो।

कोई संस्था ऐसी नहीं है जो जैन इतिहास के लेखन, संरक्षण में ही कोई रुचि ले। समाज मंदिर निर्माण में व्यस्त है या मुनिराजों के प्रवचन-प्रकाशन में। पूजा-पाठ-स्तोत्र ही जिनवाणी का पर्याय बन गये हैं। ऐसी स्थिति में जैन-इतिहास स्वयं ही इतिहास बनने की स्थिति में आ गया है।

क्या समाज में कोई भी ऐसी संस्था नहीं अवतरित होगी जो दुनिया भर में प्रकाशित जैन धर्म से संबंधित खोज/शोध ग्रंथों/लेखों का संकलन एक पुस्तकालय में कर सके, शिलालेखों के छायाचित्रों का संकलन रख सके।

खंडगिरि-उदयगिरि की गुफाओं पर असामाजिक तत्वों ने कब्जा कर लिया, हम कुछ नहीं कर सके। यह इतिहास बन गया। तीर्थराज श्री गिरनार पर नेमिनाथ निर्वाण

स्थल दत्तात्रेय टोंक बन गया, हम कुछ कर न सके। यह इतिहास बन गया। चम्पापुर से हमारे इष्टदेव वासुपूज्य भगवान की प्राचीन प्रतिमा चोरी हो गई। हम राष्ट्रीय स्तर पर आवाज भी न उठा सके। यह मूर्ति इतिहास बन गई। बदरीनाथ में हम मंदिर बना नहीं सकते। गोवा में हम मंदिर बना नहीं सकते। संविधान कुछ भी कहता रहे। सब मिलकर हम अल्पसंख्यक की घोषणा भी नहीं करवा सकते (पर घोषणा होती है तो उसे वापिसी अवश्य करवाने की कोशिश करने लगते हैं)।

इस युग में जैन धर्म की जो भी स्थिति बनने जा रही हो, युगों-युगों में तो नहीं थी। **"युग-युग में जैनधर्म"** के सृजक डॉ. ज्योतिप्रसाद जी जैन की महा-मनीषा को, महापाण्डित्य को, महासाधना को नित्य की तरह प्रणाम करके यही भावना भाता हूँ कि कम से कम, हर घर में न सही, हर मंदिर में तो **'युग-युग में जैनधर्म'** की एक प्रति उपलब्ध हो सके ताकि कोई तो हमारे अतीत की समृद्धि की झलक पाकर पुलकित/ व्यथित हो सके।

- ५२२, अभिनव अपार्टमेन्टस्
बी-१२, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली- ९६

शेष पृष्ठ ३० का....

महाकवि अर्हदास द्वारा रचित **'पुरुदेव चम्पू'** प्रौढ़ तथा प्रांजल संस्कृत भाषा में निबद्ध श्रेष्ठ चम्पू काव्य है। यह ग्रन्थ कोमल चारु शब्द निचय से सम्पन्न है। भगवान की भक्ति रूपी बीज से इस कविता लता का उद्भव हुआ है। गद्य काव्य की भांति अनुप्रासमय समास युक्त शब्दावली इस ग्रन्थ में प्रयुक्त हुई है। इसका मूल स्रोत जैन पुराणों पर आधारित है। कथा के उपसंहार में अहिंसा का प्रभाव निदर्शित है और सर्वजीव दया की ओर उन्मुखता प्रदर्शित की गई है। यथा -

"वृषभसेनमुखा गणिनस्तथा सकलजन्तुषु सख्यमुपागताः।
विमलशीलविशोभित-मानसाः परमनिर्वृतिमापुरिमे क्रमात्।।"

- मनीष किराना स्टोर्स,
रेलवे स्टेशन के पास, दमोह (म.प्र.)

जैन श्रमणाचार में प्रतिक्रमण का स्थान

- कु. स्वयंप्रभा पि. पाटील, शोध छात्रा

जैन दिगंबर तथा श्वेतांबर दोनों संप्रदायों के तथा उनके उपसंप्रदायों के श्रमण और श्रावकों के श्रद्धा के सिंहासन पर प्रतिक्रमण को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है ही तथा जैन आगम (शास्त्र) में भी प्रतिक्रमण के लिये विशेष भाग नियुक्त है जो कि महाकाय स्वरूप है। [१]

जैनाचार के इस अपूर्व अनुष्ठान प्रतिक्रमण के संबंध में मूलाचार प्रदीपकार सकलकीर्ति ने लिखा है-

सत्प्रतिक्रमणो धर्मो महान् रत्नत्रयात्मकः।[२]

अर्थात् प्रतिक्रमण रत्नत्रयात्मक महान धर्म है। आचार्य शिवार्य का कहना है- 'विचित्र रागादि में जाने-वाले अपने मन को जो निंदा गर्हा (प्रतिक्रमण) से लज्जित करते हैं उनको ही सामण्ण होता है।[३]

इन उद्धरणों से यह भी ज्ञात होता है कि प्रतिक्रमण के बिना श्रमण, श्रमण ही नहीं हो सकता। श्रमण जीवन के हर प्रसंग में अपना नया रूप लेकर प्रतिक्रमण उपस्थित है। श्रमणाचार में प्रतिक्रमण के स्थान निम्नप्रकार से हैं-

१. मूलगुणों में स्थान

संक्षेप में जब जैन श्रमण के मूलगुणों का विचार होता है तब वास्तविक पांच महाव्रत ही मूलगुण हैं, किंतु विस्तार से पांच महाव्रत के रक्षक अन्य २३ मूलगुणों को भी मूलगुण कहा जाता है, क्योंकि इनके बिना पांच महाव्रत पल नहीं सकते। उन अन्य २३ गुणों में एक प्रतिक्रमण भी है। इस प्रकार जैन मुनि के लिये प्रतिक्रमण एक मूलभूत या प्रधान गुण है।

२. आवश्यक क्रिया

श्वेतांबर आम्नाय में इस क्रिया को साधु के मूलगुण के रूप में नहीं स्वीकारा, किंतु आवश्यक क्रिया के रूप में स्वीकारा है तथा दिगंबर आम्नाय में साधु के मूलगुण एवं आवश्यक क्रिया ऐसा दोनों रूपों में स्वीकारा है।

यह क्रिया जैन मुनि को नियम से करने योग्य है क्योंकि इससे सब कर्मों का नाश किया जा सकता है। चूंकि यह क्रिया मुनिगण इन्द्रियों, कषायों, नोकषायों,

राग-द्वेष, पाप इत्यादि के अवश (वश नहीं होना) होकर करते हैं, इसलिये इस क्रिया को आवश्यक कहा है।[४]

मैं प्रतिक्रमण को इस युग के लिए विशेष रूप से निर्धारित आवश्यक कर्म मानती हूँ, क्योंकि वर्तमान युग में प्रतिक्रमण के योग्य अपराध हुआ हो, चाहे नहीं हुआ हो प्रतिक्रमण करना आवश्यक ही है।[५]

इस संदर्भ में डॉ. फूलचंद शास्त्री के विचार भी द्रष्टव्य हैं-

''श्रमणाचार में प्रतिक्रमण का अपना विशिष्ट स्थान है। यह षडावश्यक के अंतर्गत होते हुये भी अपनी अत्यधिक महत्ता के कारण आजकल प्रतिक्रमण शब्द का पर्यायवाची बन गया है अर्थात् आवश्यक शब्द का प्रयोग न करके भी छहों आवश्यकों के लिये प्रतिक्रमण शब्द का प्रयोग होने लगा है। इतना ही नहीं कुछ अर्वाचीन ग्रंथों तक में प्रतिक्रमण शब्द सामान्य आवश्यक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।''[६]

पुनश्च सब आवश्यकों की शुद्धि इसी प्रतिक्रमण से ही होने के कारण यही एकमात्र आवश्यक के नाम से लोक में प्रसिद्ध हो रहा है।

३. उत्तरगुणों में स्थान

संयम के भेदों को गुण कहते हैं। मुनि के चौरासी लक्ष होते हैं। उनमें से पहला-प्राणि हिंसा से विरत अतिक्रमण दोषकरण से उन्मुक्त पृथिवी और पृथ्वीकायिक के पुनः आरंभ दोष से रहित स्त्री संसर्ग से वियुक्त आकम्पित दोष से मुक्त प्रतिक्रमण शुद्धि से युक्त गुण.....इसी तरह के आठ लाख चालिस हजार गुण स्वतंत्र प्रतिक्रमण से संबंधित तथा उतने ही आलोचना के साथ संयुक्त रूप से उपलब्ध होते हैं।[७]

इन गुणों के रूप में भी जैन मुनि प्रतिक्रमण की वृहद् आराधना करके सर्व कल्याण को प्राप्त करते हैं।

४. प्रायश्चित्त तप

जैन मुनि कर्म निर्जरार्थ जो अंतरंग और बाह्य तप करते हैं उसके छह भेद हैं। उसमें से पहला भेद है प्रायश्चित। इस प्रायश्चित विधि में प्रतिक्रमण की महती भूमिका है। आचार्य उमास्वामी के इस सूत्र ''आलोचना प्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-परिहारोपस्थाना''[८] के अनुसार-आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना-इस प्रकार प्रायश्चित के नौ

भेद हैं। इनमें दूसरे नंबर पर स्वतंत्र रूप से प्रतिक्रमण तथा तीसरे नंबर पर उभय अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण संयुक्त रूप से प्रतिक्रमण का स्थान है। आगे-आगे के तपों के भेदों में भी भावरूप से प्रतिक्रमण समाविष्ट ही है। इससे ज्ञात हो रहा है कि प्रतिक्रमण एक प्रायश्चित तप भी है।

इस प्रकार अंतरंग प्रायश्चित तप के रूप में भी श्रमण जीवन में प्रतिक्रमण को स्थान मिला है।

५. मिथ्याकार समाचार

समाचार (श्रमणाचार) के औधिक समाचार और पदविभागीक समाचार ऐसे दो मूल भेद हैं। औधिक समाचार के भी इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आसिका, निषेधिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छन्दन, सनिमन्त्रणा और उपसंपत्-ये दस भेद हैं।[९] इन दस भेदों में मिथ्याकार औधिक समाचार की आराधना प्रतिक्रमण द्वारा ही होती है। इसी लक्ष्य से प्रतिक्रमण पाठ में **"मिच्छा मे दुक्कडम्"** इन शब्द विशेष का पुनः पुनः उच्चारण होता हे। इससे ज्ञात होता है कि श्रमण जीवन में मिथ्याकार समाचार के रूप में प्रतिक्रमण की ही साधना होती है।

६. छेदोपस्थापना चारित्र

अपराध करना मनुष्य मात्र की स्वाभाविक वृत्ति है, चाहे श्रावक हो या श्रमण, प्रमादवश पद-पद पर अंतरंग व बहिरंग दोष लगा करते हैं, इस कलिकाल में तो दोषों की बहुलता है।

उत्सर्ग मार्ग (निर्दोष राजमार्ग) से चलने की भावना रहने पर भी श्रमण से जो अपराध होते हैं उन अपराधों को दूर करने के लिये और पुनः व्रत में स्थापित होने के लिये जैन साधु **छेदोपस्थापना चारित्र** ग्रहण करते हैं अर्थात् व्रत खंडन होने पर फिर उसमें ही उपस्थित होना छेदोपस्थापना चारित्र है।[१०]

प्रतिक्रमण भी एक तरह से छेदोपस्थापना चारित्र ही है। प्रतिक्रमण सूत्र पठन में अनेक बार **"छेदोवट्ठाणं होदु मज्झ"** ऐसा कहा भी जाता है।

इसलिये जहाँ-जहाँ जैन शास्त्रों में छेदोपस्थापना चारित्र का वर्णन किया है वहाँ-वहाँ प्रतिक्रमण का वर्णन अवश्य मिलता है।

आचार्य शिवार्य यहाँ तक कहते हैं कि-अपवाद लिंग में स्थित होते हुये भी अपनी शक्ति को न छिपाता हुआ यदि श्रमण अपनी निंदा गर्हा (प्रतिक्रमण) करता है तो वह शुद्ध होता है।[११]

इस तरह जैन साधु छेदोपस्थापना चारित्र के रूप में भी प्रतिक्रमण की आराधना करते हैं।

७. नित्य तथा नैमित्तिक क्रिया

श्रमण जीवन की जो आहार-विहारादि नित्य क्रियायें होती हैं, उसमें भी प्रतिक्रमण किया जाता है तथा पौर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशिष्ट तिथियों के विधि-विधान में प्रतिक्रमण को स्थान मिला है। इस प्रकार नित्य तथा नैमित्तिक क्रिया के रूप में भी जैन श्रमण प्रतिक्रमण करते हैं।[१२]

८. श्रमणकल्प

दिगंबर एवं श्वेताम्बर दोनों ही परंपराओं में श्रमणों के लिये दस प्रकार के कल्प बतलाये हैं। कल्प व्यवस्था या सम्यक् आचार को कहते हैं। इन दस कल्पों का पालन श्रमण को अवश्य करना होता है। अतः इन्हें स्थितकल्प कहते हैं।[१३] ये कल्प हैं-१ अचेलकत्व, २. औद्देशिक त्याग, ३. शय्यागृह त्याग, ४. राजपिंड त्याग, ५. कृतिकर्म, ६. व्रत, ७. ज्येष्ठ, ८. प्रतिक्रमण, ९. मास और १०. पर्या।[१४]

जो आचार्य सदा इन दस प्रकार के स्थितिकल्प में सम्यक् रूप से स्थित रहते हैं उन्हें ही आचारवान कहा जाता है।[१५]

इस प्रकार श्रमणकल्प में भी प्रतिक्रमण को स्थान प्राप्त है।

९. परस्पर परिचय और परीक्षण

जब कोई श्रमण वा आचार्य सल्लेखना (मृत्यु महोत्सव) के लिए या विशेष साधना अथवा ज्ञान प्राप्ति के लिये अपने संघ से आज्ञा लेकर अपने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसी अन्य गण (संघ) में जाते हैं, तो ऐसा श्रमण अन्य गण के आचार्य व श्रमणों के लिए अतिथि या आगन्तुक श्रमण कहलाते हैं।[१६]

आगन्तुक का परिचय पाना हो तो प्रतिक्रमण एक अच्छा साधन बन जाता है। संघ के आचार्य आगन्तुक मुनि से तुम्हारे कितने प्रतिक्रमण हुये हैं, कितने नहीं इस प्रकार की विचारणा करते हैं।[१७]

आगन्तुक मुनि अपने संघ में रखने योग्य है कि नहीं? अथवा यह संघ आगन्तुक के लिये आश्रय करने योग्य है कि नहीं? इस परस्पर परीक्षण के लिये भी यह एक प्रभावी साधन बनता है। किये हुये दोषों का प्रतिक्रमण आगन्तुक अथवा संघस्थ मुनि

किस विधि से करते हैं इसका भी परस्पर निरीक्षण-परीक्षण करते हैं। इस प्रकार श्रमण परीक्षा का एक प्रमुख साधन प्रतिक्रमण है।[१८]

१० प्रतिक्रमण का भी प्रतिक्रमण

प्रतिक्रमण करने में कोई अपराध हो तो प्रतिक्रमण ही उसका प्रायश्चित बनता है। प्रतिक्रमण में होने वाले दोषों का निवारण उसकी सम्यक् आवृत्ति से हो सकता है। साधु के लिये अन्य कोई उपाय नहीं रहता। इस तथ्य का समर्थन प्रतिक्रमण सूत्र पाठ में ही किया है।[१९] इस प्रकार श्रमण जीवन में यह प्रतिक्रमण बेजोड़ या अद्वितीय है।

११. सल्लेखना के प्रसंग में

अंत समय में निर्विकल्प समाधि के सिद्धयर्थ, जीवन के सर्व दोषों को दूर करने के लिये श्रमण उत्तमार्थ प्रतिक्रमण करते हैं और निर्भार बनते हैं।

, इस प्रकार जैन श्रमणाचार में प्रतिक्रमण को सबसे महत्वपूर्ण सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वह श्रमण के साथ सदैव रहने वाला सच्चा साथी है।

प्रतिक्रमण का प्रयोजन

चारित्र्य को निर्मल बनाना या उन्नत करना ही प्रतिक्रमण का एकमात्र प्रयोजन रहा है। क्षु. मनोहरलाल वर्णी जी के शब्दों में, "अतीत दोषों का परिहार हो जाय तथा अतीत दोषों के संस्कार नहीं रहें अथवा दोषों के कारण उस काल में बंधे हुये कर्म विफल हो जावें, वे पुनः दोष उत्पादन में समर्थ नहीं होवें। पूर्ण रूप से श्रमण जीवन दोषों से मुक्त एवं पवित्र बने, यही इस क्रिया का प्रयोजन उद्देश्य एवं हेतु है।"[२०]

– शुद्धात्म सदन, नेमिनाथ नगर,
विश्रामबाग, सांगली– ४१६४१५

सन्दर्भः- १. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश,** भाग ४, पृ. ६६
२. **मूलाचार प्रदीप,** श्लोक ४२, चतुर्थ अधिकार, पृ. १४३
३. **भगवती आराधना,** गाथा १४२ पृ. १७६
४. **मूलाचार, भाग १, मूलागुणाधिकार,** गा. २,३ की **आचारवृति टीका,** पृ. ७ तथा **मूलाचार,** भाग १, **षडावश्यकाधिकार** गा. ५१५, **आचारवृत्ति टीका,** पृ.३६१;
५. **मूलाचार, भाग १, षडावश्यकाधिकार गाथा** ६२६

६. **मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन,** पृ. १२१
७. **मूलाचार भाग २, शीलगुण अधिकार,** गा. १०३३ की **आचारवृत्ति** पृ. १८६
८. **तत्त्वार्थसूत्र,** अ-६, सूत्र-२२
९. **मूलाचार,** भाग-१, गा. १२४, १२५ **समाचाराधिकार,** पृ. १०६, ११०
१०. **प्रवचनसार,** गा. २०८, २०९ की जयसेनाचार्य की टीका पृ. ३१५ संपा. कल्पना
११. **भगवती आराधना,** गाथा ८६
१२. **अनगार धर्मामृत,** अ-६
१३. **जैन श्रमण स्वरूप और समीक्षा,** पृ. १२३
१४. **मूलाचार,** भाग २, गा. ६११, पृ. ११६
१५. **भगवती आराधना,** गा. ४२२, पृ. ३१६
१६. **जैन श्रमण स्वरूप और समीक्षा,** पृ. २४३
१७. **मूलाचार,** भाग १, **समाचाराधिकार** गा १६६ एवं **आचारवृत्ति** पृ. १३८
१८. **मूलाचार,** भाग १, गा. १६३, एवं **आचारवृति; भगवती आराधना,** गा. ४१४,
१९. **प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी,** पृ.१३, १४
२०. **नियमसार प्रवचन,** भाग ६, पृ. ७६

जिन-वचन

जे य कंते पिए भोए लद्धेवि पिट्ठी कुव्वई।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति वुच्चई।।

(जो व्यक्ति मनोहर और प्रिय भोगों के प्राप्त होने पर भी उनसे पीठ फिरा लेता है अर्थात् उन्हें त्याग देता है तथा जो स्व आधीन भोगों को भी त्याग देता है वही त्यागी कहलाता है।)

गंथंणिमित्तं घोरं परितावं

(परिग्रह मनुष्य के लिये घोर परिताप का कारण है।)

गंथो भयं णराणं

(मनुष्यों के भय का कारण परिग्रह है।)

समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो

जैन धर्म में धर्म गुरुओं का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, बड़ा मान-सम्मान है, जितना कदाचित् ही किसी समाज में हो। मोक्ष मार्ग के साधक होने के कारण वे बड़े श्रद्धास्पद हैं। सतत वीतरागता, समता, इन्द्रिय संयम तथा अपनी देह से भी विरक्तता एवं सभी प्राणियों से मैत्री भाव की साधना करने वाले इन पंच महाव्रती गुरुओं में श्रावक तीर्थंकर महाप्रभु का साधनारत प्रतिबिम्ब खोजता है तथा उनकी गिनती अर्हन्त-सिद्धों के साथ परमेष्ठियों में करता है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से सभी पिच्छीधारी गुरु-गुरुणी चातुर्मास स्थापना करके एक ही स्थान (नगर-कस्बे-गांव) में स्थिरावास करेंगे। जहाँ कहीं किसी आचार्य-मुनि-आर्यिका माता श्री का चातुर्मास होता है वहाँ उनके सान्निध्य एवं प्रेरणा से हो रहे बृहद् पूजा विधान, उनके धर्म प्रवचन, धार्मिक गोष्ठियां, शोभा यात्राएं, चातुर्मास काल में पड़ने वाली उनकी तथा उनके गुरुवर्य की जन्म-दीक्षा-आचार्य पद तथा समाधि जयन्तियों को बड़े समारोहपूर्वक मनाने, अपने गुरुवर्य या स्वयं अपने द्वारा प्रायोजित करोड़ों की लागत से नवीन अतिशय क्षेत्रों के निर्माण-विकास या इसी प्रकार की अन्य भारी योजनाओं के लिए विपुल द्रव्य का दान देने के लिए श्रावकों को प्रेरणा देने, उन्हें तीर्थभक्त, मुनिभक्त, धर्म शिरोमणि दानवीर आदि के विरुद से उन्हें संबोधित कर धर्म कार्यों के लिए अधिकाधिक दान देने के लिए उत्साहित करने से समाज में अपूर्व श्रद्धा व धर्म प्रभावना का वातावरण चातुर्मास भर बना रहता है। जिन मुनि श्री/आर्यिका माताश्री का चातुर्मास जितना वैभवपूर्ण ढंग से मनाया जाता है, वह उतने ही प्रभावक मुनिराज/माताश्री गिनी जाती हैं। अभी दो वर्ष पूर्व हुए एक प्रवचन कुशल प्रभावक युवा मुनि श्री के चातुर्मास काल में हुए व्यय को चातुर्मास व्यवस्था समिति के आयोजकों ने लगभग २० लाख रुपया बताया था। इस व्यय का कोई लेखा जोखा या हिसाब किसी को नहीं देना पड़ता। अतः उत्साही कार्यकर्ताओं की भी कोई कमी नहीं रहती।

हमारे अधिकांश धर्म गुरुओं/गुरुणियों की धर्म प्रभावना की अवधारणा प्रायः उपर्युल्लिखित कार्यक्रमों तक ही न्यूनाधिक सीमित रहती है।

आज अकेले दिगम्बर जैन आम्नाय में पिच्छीधारी धर्म गुरुओं/गुरुणियों की संख्या ५०० के लगभग होगी तथा उनके अकेले चातुर्मास काल पर ही समाज का अरबों का व्यय हो जाता है।

हमें धर्म प्रभावना के निमित्त से किए गए किसी भी आयोजन पर कोई आपत्ति नहीं है यद्यपि वैभवपूर्ण प्रदर्शनों से समाज का कोई भला नहीं होता। बृहद् क्रिया काण्ड भी जैनधर्म की मूल भावना से मेल नहीं खाते।

यदि हमारे धर्म गुरु/गुरुणी जिनके प्रति समाज में अत्यन्त श्रद्धा व सम्मान है कुछ समाज सुधार की ओर भी ध्यान दें तो उनका समाज पर स्थायी उपकार होगा। आज दहेज प्रथा के अभिशाप से जैन समाज का कम सम्पन्न विशाल वर्ग बुरी तरह से ग्रस्त है। होड़ा-होड़ी में वर पक्ष द्वारा दहेज की अधिकाधिक मांग तथा विवाह समारोह में वैभवपूर्ण प्रदर्शन से एक ही कन्या के विवाह से अनेक परिवारों की आर्थिक स्थिति ही चरमरा जाती है। परिणामस्वरूप अनेक कन्यायें बिना ब्याहे ही जीवन यापन करने के लिए विवश हो रही हैं। दहेज हत्याओं से भी यह अहिंसा परमो धर्मः का उद्घोष करने वाली समाज भी अछूती नहीं रह गयी है। यदि हमारी श्रद्धा के केन्द्र मुनि/आर्यिका माताएं जैन समाज को कुरीतियों से उबारना भी अपने साधु जीवन का मिशन बना लें तो निश्चय ही समाज को इन कुरीतियों से उबरने में देर नहीं लगेगी और वह एक आदर्श समाज बन सकेगा।

इसके लिए हमारा उनसे विनम्र निवेदन है कि अपने प्रवचनों में वे-

(१) दहेज की कुप्रथा का डटकर विरोध करें तथा युवकों व उनके अभिभावकों से दहेज न मांगने-लेने के प्रतिज्ञा पत्र भरवाएं।

(२) विवाह समारोह व अन्य पारिवारिक उत्सव सादगी से मनाए जाने पर जोर दें।

(३) बिजली की सजावट, रोशनी व अनावश्यक साज-सज्जा पर अपव्यय रोकने की दृष्टि से तथा जैनधर्म की पहिचान बनाए रखने के लिए सब विवाह कार्य दिन ही में सम्पन्न करने पर बल दें।

(४) अब विवाह समारोहों में अपव्यय रोकने के लिए सामूहिक विवाह की भी प्रथा चल पड़ी है पर कदाचित् ही कोई सम्पन्न परिवार ऐसे समारोहों में सहभागी होता हो। यदि सम्पन्न परिवार इसमें अगुवाई करें तो कम सम्पन्न परिवार भी इस प्रथा को अपनाने में उत्साहित होंगे।

ये हमने केवल कुछ सुझाव दिए हैं जिन्हें अपनाकर हमारे श्रद्धेय मुनिगण एवं आर्यिका माताएं अपने साधु जीवन का सार्थक उपयोग समाज कल्याण के लिए कर सकते हैं।

- अजित प्रसाद जैन

चिन्तन-कण

'अरिहंत' में भाव हिंसा

- डॉ. शशि कान्त

शोधादर्श-५२ में प्रकाशित अपने लेख "अरिहंत या अरहंत" में हमने यह निवेदन किया था कि अरिहंत शब्द में भाव हिंसा का दोष आता है। कुमुदचन्द्र द्वारा रचित कल्याण मन्दिर स्तोत्र में श्लोक-१३ के संदर्भ में एक मनीषी विद्वान ने यह प्रस्तुति की है कि चूंकि कर्म अजीव हैं उनको मारने, नष्ट करने, जलाने आदि में न प्रमाद है और न प्राण व्यपरोपण, अतः जब हिंसा ही नहीं तो भाव हिंसा कैसी ? श्लोक निम्नवत् हैं-

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नील-द्रुमाणिं विपिनानि न किं हिमानी।।

प्रथम दो पंक्तियों का भावार्थ है कि हे प्रभु, जब आपका क्रोध पहले ही निरस्त हो चुका है तो यह किस प्रकार कहा जाता है कि आपने कर्म रूपी चोरों को ध्वस्त किय। अंतिम दो पंक्तियां उसी भाव को एक उपमा के माध्यम से स्पष्ट करती हैं।

स्वयं अरहंत भगवान अपने को कर्मों का नाश करने वाला घोषित नहीं करते परन्तु उनके भक्तगण उनमें यह हिंसा का भाव आरोपित करते हैं। उपर्युक्त श्लोक में भी कर्म के लिए चोर शब्द का प्रयोग और उसे ध्वस्त करने की बात स्तुतिकर्ता ने कही है। जो हिंसा का भाव है वह भक्त की भावना में है और उसी हिंसा की भावना से प्रेरित होकर भक्तों ने अपने पूज्य को भी हिंसा में लिप्त सूचित कर दिया है। यह भी ध्यातव्य है कि यदि मन में किसी को ध्वस्त या नष्ट करने की भावना आ जावे तो वह हिंसा के भाव को इंगित करती है। अजीव के प्रति भी हिंसा का भाव हो सकता है और होता भी है। ठोकर लगने से यदि कोई गिर जाता है तो गिरने वाले व्यक्ति के मन में इस ठोकर के प्रति आक्रोश अनायास ही उत्पन्न हो जाता है, अर्थात् हमारे मन में हिंसा का भावोद्रेक होता है और यही भाव-हिंसा है। जैन सिद्धान्त और तत्वज्ञान के मर्मज्ञ कुछ शास्त्रोक्त औचित्य अरिहंत शब्द के पक्ष में जुटा सकते हैं, परन्तु हम जैसे सामान्य जिज्ञासु इस शब्द का अभिधात्मक अर्थ ही अपनी अल्पबुद्धि में समझ पाये हैं।

श्रीवत्स

इसी अंक में डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव का श्रीवत्स पर विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित है। डॉ. श्रीवास्तव ने इस प्रतीक चिह्न के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया है जो सारभूत है।

श्रीवत्स का जो प्राचीन अंकन प्राप्त होता है वह नाग-युगल के रूप में है। नाग का भारतीय जनमानस में एक विशेष स्थान है और उसे पाताल लोक का होने के कारण धन का रक्षक भी माना गया है। नाग-पूजा जन-सामान्य में बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित है। यह कहना कठिन है कि नाग के प्रति भारतीय जन-मानस में आसेतु-हिमांचल सर्वत्र एक प्रकार का भय अथवा आदर भाव क्यों है। संभव है कि भारत के बाहर भी नाग के प्रति इस प्रकार का कोई पूज्य भाव रहा हो। मिस्र की प्राचीन सभ्यता में भी नाग Motiff का प्रचलन था। मध्य एशिया से जो शक आदि जातियां ई.पू. पहली से ई. सन् की दूसरी शताब्दी तक आक्रमणकारी के रूप में पश्चिमोत्तर भारत की ओर से प्रविष्ट हुयीं, उनमें भी नागपूजा का प्रचलन रहे होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। मथुरा की जैन पुरा-संपदा एवं अभिलेख जो प्रायः पहली शती ई. पूर्व से मिलते हैं, उनमें दान-दाता प्रायः शक जाति के रहे प्रतीत होते हैं, और बहुत संभव है कि उन्होंने अपने जन-मानस में नागों के प्रति जो व्यामोह था उसका प्रतीक रूपांतर इस चिह्न के रूप में किया हो।

वराहमिहिर की **बृहत् संहिता** में जैन तीर्थंकर मूर्ति के लक्षण के रूप में वक्ष पर श्रीवत्स के अंकन का उल्लेख है। प्रतिमा विज्ञान का यह ग्रन्थ छठी-सातवीं शताब्दी ई. का माना जाता है। उस समय से श्रीवत्स का जो अंकन तीर्थंकर प्रतिमा के वक्ष पर मिलता है वह Rhomboid अर्थात् असमकोण-चतुर्भुज के आकार का है। नाग-युगल के प्रतीक स्वरूप श्रीवत्स का अंकन छठी शताब्दी ई. के समय से उपलब्ध तीर्थंकर मूर्तियों पर हमारी जानकारी में नहीं है।

खारवेल के हाथी गुम्फा शिलालेख के प्रारंभ में स्वस्तिक के ऊपर जो चिह्न है वह नाग-युगलिया श्रीवत्स नहीं है। यह स्पष्टतः मात्र राज-मुकुट का प्रतीक है। राज-मुकुट का प्रतीक लेख के प्रारम्भ में होना यह सूचित करता है कि यह एक राजाज्ञा (edict) थी।

आयागपट्ट

आयागपट शब्द को शुद्ध रूप से आयागपट्ट लिखा जाना चाहिएं जो आर्यक्पट्ट का अपभ्रष्ट रूप है। आर्यक्पट्ट का अर्थ है पूजनीय पट्ट या वह चिप्टी पट्टी जिस पर राजाज्ञा या दान आदि की सनद खोदी जाये अथवा पूजा के योग्य कोई प्रतीक चिह्न बनाये जायें। पट शब्द का अर्थ होता है कपड़ा या पर्दा या दरवाजे का पल्ला। धातु या पत्थर आदि के लम्बे चौड़े टुकड़े या पट्टी जिस पर चित्र या लेख अंकित हो, को भी पट कह सकते हैं। परंतु शुद्ध रूप में पट्ट शब्द का प्रयोग किया जाना अधिक समीचीन होगा।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- ४

मनुष्य गति में नरकों की अनुभूति

- श्री सुखमाल चन्द जैन

(जैन शास्त्रों में नरक गति के सातों नरकों के दुखों का (जिनके कष्टों में उतरोत्तर वृद्धि होती जाती है) बड़ा भयावह चित्रण प्रस्तुत किया गया है। ये नरक इस लोकाकाश में भौगोलिक दृष्टि से वास्तव में कहीं स्थित हैं भी या केवल शास्त्र रचयिता आचार्यों के कल्पना प्रसून हैं जिन्हें उन्होंने मनुष्य को पाप कर्मों से विरत करने के लिए पल्लवित किए हैं, यह आस्था का विषय है क्योंकि इनका प्रत्यक्षदर्शी तो कोई यहाँ है नहीं। किन्तु वयोवृद्ध (६४ वर्षीय) स्वाध्यायी एवं चिन्तक बंधुवर सुखमाल चंद जी का मानना है कि इन सातों नरकों का प्रत्यक्ष दर्शन (अनुभव) इस मनुष्य गति में भी किया जा सकता है जैसा कि उन्होंने निम्नलिखित चिन्तन कण में संक्षेप में प्रस्तुत किया है। **-प्रधान सम्पादक**)

नरक के द्वार पर रत्नप्रभा (प्रथम नरक) का साइन बोर्ड है। व्यक्ति आकर्षित होता है-मालामाल हो जाता है साथ ही अनेक दुष्चिन्ताएं भी उसका दामन पकड़ लेती हैं। नींद लाने के लिए भी गोलियां खानी पड़ती हैं। अरे भाई (वह सोचता है) परलोक किसने देखा है- आध्यात्मिक चर्चा भी गपशप है। पर है तो यह नरक ही, सुख से अधिक दुख भोगता है। क्षण भंगुर सुखों में लिप्त होकर वह मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या के वश हुआ अनेक अशुभ कर्मों का बन्ध भी करता है।

(दूसरा नरक-शर्करा प्रभा)-फिर वह प्रसिद्धि का क्षण भंगुर सुख भोगता है। साथ ही मधु-मेह आदि रोगों से ग्रस्त हुआ मन वांछित भोग भोगने से वंचित रहता है)

(बालुका प्रभा नरक)- फिर कोरा रोगिस्तान, फिर दलदल (पंक प्रभा नरक), फिर धुंध (धूम प्रभ नरक), फिर अंधकार (तमो प्रभा) और अंत में अंधकार (महातमो प्रभा नरक) यह हुआ अनैतिकता का कुफल।

आज आप भी और मैं भी यह तो संकेत नहीं कर सकते कि सब धनाढ्य करोड़पति पहिले रत्न-प्रभा में ऐश लूट रहे हैं। मधुमेह आदि रोगों से ग्रस्त होकर सब कुछ होते हुए स्वयं कुछ नहीं खा पी सकते। शर्करा प्रभा तो ऊंची दुकान के फीके पकवान की लोकोक्ति को छिपाए है। बालुका प्रभा अनेक ट्रान्जेक्शन में नुकसान और जमीन-जायदाद से अधिक उसके विरुद्ध कर्जदारी, मुकदमा-अदालतों के दलदल हैं। ऐसा व्यक्ति चौथे नरक के दुखों की अनुभूति कर रहा होता है।

गति चारों गतियों में चलाने वाला भाव कर्म है। आयु कर्म नरकायु के प्रारंभ होने पर उदय में आएगा। वह उतना ही भयंकर हो सकता है जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है। किन्तु मनुष्य गति में सामने आ रही दुर्घटनाओं और आतंकवाद के उपद्रव शास्त्र कथन से भी वीभत्स प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। फिर राग-द्वेष-मोह ही न्यायोचित मालूम पड़ने लगते हैं और वीतरागी वीतद्वेषी-निर्मोही आत्मा कठोर अप्रासंगिक और अमानवीय तथा अधार्मिक लगने लगती है।

- एफ-३, ग्रीन पार्क (मेन), नई दिल्ली-१६

जैन धर्म-दर्शन का संदेश

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन

जीव-आत्मा सदा से है, सदा तक के लिये। न जन्म, न मृत्यु। तो क्या यह बात कि बार-बार जन्म होता है, सही है।

मुझे लगता है कहीं न कहीं भ्रांति है।

जीव अनिश्चितता की स्थिति से उबरने के लिये, निश्चित अवस्था तक पहुंचने के लिए, एक यात्रा के लिये निकल पड़ता है और तब तक सफर करता रहता है जब तक सभी कुछ सीख समझ नहीं लेता। इस दौर में अलग-अलग शरीर मिलते हैं, अलग-अलग तरह के तजुर्बे होते हैं। कुछ जीव बड़ी तेजी से सफर तय कर लेते

हैं। कुछ लंबा समय लेते हैं। **Nature** (प्रकृति) से सहयोग मिलता रहता है। एक समय आ ही जाता है जब सभी कुछ सीख समझ लिया जाता है तब यह जीव सफर से पूर्ण विराम लेता है।

यह जरूरी नहीं कि हर जीव को लम्बे सफर ही तय करने पड़ें। कुछ जीव कहीं पर शिथिल पड़ जाते हैं और वहीं के पड़ाव की अवधि लम्बी हो जाती है। कुछ जीव सफर प्रारम्भ कर अंत में ही आराम करते हैं।

कुछ जीवों को, अपनी यात्रा के दौरान, ऐसे तजुर्बेकार जीवों का संसर्ग मिल जाता है कि उनके तजुर्बे से सीख जाते हैं और सफर की दूरी कम रह जाती है। कभी-कभी उन अधिक तजुर्बेकार जीव के संसर्ग में चाल में इतनी तेजी आ जाती है कि सफर और तेजी से कटता है।

कुछ जीव अपने ही सफर को तय करने में लगे रहते हैं और कुछ बिरले औरों को अपने तजुर्बे बांटते हैं, सफर तै करने में सहयोग करते हैं और उनके प्रयास से बहुत से जीव पहले ही सफर पूरा कर जाते हैं। जो जीव और जीवों को सहयोग करते हैं वे कुछ देर में मंजिल पर पहुंचते हों हो सकता है। यह भी संभव है कि अपनी समझ-बूझ से बहुत कुछ, विवेक से समझ जाते हों और व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता न पड़ती हो और इस प्रकार वे भी सफर जल्दी तयकर जाते हों।

यही संदेश है जैन धर्म-दर्शन का मेरे सोच में।

- 'शैलेन्द्र भवन', शेखपेन स्ट्रीट, खुर्जा- २०३१३१

कुछ कहिए, कुछ सुनिए

-डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी

'आज हर इंसान सिर्फ अपनी बात सुनाने के लिये उतावला है। दूसरे की बात सुनने के लिए कोई तैयार नहीं, किसी में धैर्य नहीं।' सूक्ष्म विश्लेषण किया जाये और गूढ़, गंभीर निहितार्थ समझा जाए तो इस एक लाइन के कथन में जिंदगी का बहुत बड़ा फलसफा छिपा पड़ा है। उस फलसफे पर अगर अमल कर लिया जाए तो जिंदगी क्या, पूरी सभ्यता बदल सकती है और अगर न समझें तो यह कथन भी अन्य धार्मिक व आध्यात्मिक कथनों की मानिंद ऊपरी तौर पर महज कोरी लफ्फाजी ही प्रतीत होगा जिसके चिंतन-मनन के लिए आज किसी के पास न वक्त रहा है और न दिलचस्पी।

अपनी कहने के साथ-साथ दूसरे की भी बात सुन ली जाए तो निश्चित तौर पर कई द्वंद पनपने से पहले ही मिट सकते हैं। यह बात जगजाहिर है कि तनाव और टकराहट को टालने वाला हर व्यक्ति सबकी श्रद्धा और सम्मान का पात्र होता है। लेकिन सच्चाई यह है कि आज दुनिया में कोई किसी की बात सुनने को राजी नहीं। सबको अपनी-अपनी कहने और सुनाने की पड़ी है। "लोग मेरी बात सुनें और उस पर अमल करें"-यह तो अदने से अदना शख्स भी चाहता है। लेकिन ऐसे लोग कितने हैं जो अपने कहने के साथ-साथ दूसरों की बात को भी शिद्दत के साथ सुनने और उस पर अमल करने के लिए तैयार हैं? यकीनन बहुत ही विरले।

दुनिया में मारामारी, अफरातफरी, सीनाजोरी और छीना झपटी का जो भयानक दौर चल रहा है, उसकी तह में कहीं न कहीं यही वजह छिपी पड़ी है कि सुनने का किसी में धैर्य नहीं बचा है। जिसके जैसा जी में आए, वैसा व्यवहार कर रहा है। कहीं खून बहाकर और कहीं लूट खसोट करके। एक दूसरे की बात को सुनने का धैर्य और उस पर अमल करने की गंभीरता बनी रहे तो यकीन जानिए, अमन और भाईचारा अक्षुण्ण बना रह सकता है-पारिवारिक स्तर पर भी और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी। लेकिन जहां-जहां संवाद घटा या टूटा, वहीं नतीजों के रूप में जलजले और विप्लव ही सामने आए हैं। दुनिया में अब तक जितनी भी बड़ी-छोटी, कामयाब-नाकामयाब बगाबतें हुई हैं, उनमें से अधिकांश की तह में कहीं न कहीं शासकों और बगावतियों के बीच संवाद का अभाव रहा है। कहीं संवाद हुआ है ही नहीं और कहीं होकर टूट गया। कहीं राजा ने प्रजा के कसी वर्ग की बात नहीं सुनी और कहीं प्रजा के एक वर्ग ने राजा के तर्कों, अपीलों को अनसुना या खारिज कर दिया। नतीजन, असंतोष की सुलगती चिंगारी बगावत का लावा बनकर फूट पड़ी। आज के दौर का विश्वव्यापी हिंसावाद, उग्रवाद, आतंकवाद क्या है ? वह भी कहीं न कहीं अभाव, असंतोष, अहंकार, असहमति पर खुली बहस या संवाद के अभाव का ही नतीजा है। कुछ आधुनिकता का असर, कुछ अभावों की मार, कुछ पीड़ितों के अहम् का टकराव और कुछ शहरीकरण की प्रक्रिया के मद्देनजर टूटते-बिखरते परिवार इन सबने मिलकर घर-परिवारों में एक दूसरे की बात सुनने का माद्दा जैसे उड़न छू कर दिया है। पुरातनपंथी मां-बाप आधुनिकतावादी संतान की और आजाद ख्याल संतान रूढ़िवादी मां-बाप की बात सुनने को कतई तैयार नहीं। नए जमाने के तकनीकी रंगढंग में रंगे बच्चों को माप-बाप की हर सलाह उनके स्वच्छंद जीवन जीने के अधिकार में

बाधा डालती हैं कि उनकी संतान उनकी तजुर्बेकार 'सीख' की घोर उपेक्षा करके उनकी बुजुर्गी का अपमान कर रही है। एक की अपनी इच्छा दूसरे पर लादने की प्रवृत्ति और दूसरे की अपनी मनमानी करने की मनोवृत्ति का कुल नतीजा यह हुआ है कि दो पीढ़ियों के बीच खाई को पाटने के लिये समन्वय का पुल कभी बन भी नहीं पाया और संवाद की गुंजाइश लगातार घटती चली गई।

आज से सैकड़ों हजारों साल पहले ईसा, बुद्ध, महावीर, पैगम्बर मोहम्मद और नानक जैसी महान हस्तियों ने अत्यंत उपयोगी बातें कही थीं। तब से इंसान पुण्यात्माओं का अदब सत्कार तो जरूर करता आया है पर उनकी बातों पर अपेक्षित अमल नहीं किया। अमल किया होता तो आज चारों ओर अराजकता का माहौल न होता।

- कोठारी भवन,
३०-३१, उद्योग मार्ग, कोटा-७

महावीर वाणी

अनेकान्त दृष्टि

जावइया वयणपटटा तावइया चेव हुंति नयवाया।
जेण विणावि लोगस्स ववहारो सव्वहा न निव्वडई।।

(जितने वचनपथ हैं उतने ही नयवाद हैं अर्थात् जो कुछ भी कहा जाता है वह किसी न किसी दृष्टि (नय) से कहा जाता है। लोक के सब व्यवहार इसके (नय के) बिना नहीं निपटते अर्थात् जगत के सब व्यवहार नय सिद्धान्त से ही चलते हैं।)

णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।।
तम्हा वयणविवादं सगपर समएहिं वज्जिज्जो।।

(लोक में अनेक जीव हैं, कर्म भी अनेक प्रकार के हैं, तथा प्रत्येक व्यक्ति की नाना प्रकार की उपलब्धियां होती हैं। अतः अपना मत अथवा दूसरा मत मानने वाले से वचन-विवाद नहीं करना चाहिये।)

उक्त रक्तचाप से कैसे बचें

कुछ जरूरी उपाय करके इसे काबू में रखना और लगभग पूर्ण स्वस्थ रहना संभव है। यहां दिए कुछ उपाय करके चिकित्सक से भी परामर्श लेना चाहिए।

- संतुलित, नियंत्रित व कम नमक वाले भोजन का सेवन करें।
- योगासन (श्वासन) लाभप्रद है, प्रतिदिन करना चाहिए।
- अधिक उम्र होने पर समय-समय पर रक्तचाप की जांच अवश्य कराएं।
- आठ-नौ घंटे की नींद अवश्य लें।
- यदि दिन में भोजन के बाद समय मिले, तो अवश्य सोएं।
- उच्च रक्तचाप को कम करने के लिए दिनभर में आधा से एक ग्राम ही नमक लें।
- तनाव, क्रोध व चिंता से बचें।

उक्त रक्तचाप को नियंत्रित करने के लिए-

- सप्ताह में एक बार उपवास अवश्य रखें।
- लौंकी का आधा कप रस, थोड़ा पानी मिलाकर दिन में तीन बार लें।
- सेव खाने से रक्तचाप नियंत्रित होता है।
- नींबू का सेवन किसी भी रूप में प्रतिदिन करना चाहिए।
- टमाटर रक्तचाप को घटाता है।
- आंवला रक्त शोधक है, उसे नित्य खाना चाहिए।
- ककड़ी का रस रक्तचाप के लिए फायदेमंद होता है।
- नियमित मालिश करने पर रक्तचाप में सुधार होता है।
- गाजर और पालक का रस मिलाकर पीना उच्च रक्तचाप में लाभकारी है।
- अरबी खाने से रक्तचाप कम होता है।

(**सब दूर का** पत्रिका के
२६ मई, २००४ के अंक से साभार - सम्पादक)

निसर्गोपचार अष्टक

देह साथी तुम्हारा इसी जन्म का।
पूर्व कर्मों ने तुम्हें दिया भाइयो।
जानो इसको सदा रक्खो सेवक इसे।
धर्म के हेतु यह नित्य सेवक रहे।।१।।

तुम न हो देह तुम तो प्रभू ज्ञायक।
जानना ही तुम्हारा सतत् कार्य है।
देह को जड़ अचेतन सदा जानना।
देह है यन्त्र उससे सही काम लें।।२।।

तुम न इच्छायें अपनी लादो देह पर।
देह बीमार होकर सतायेगा नित।
पर भव में निगोदों में नर्कों में तुम।
बिलबिलाओगे काल अनंत सतत्।।३।।

देह तो यह यहीं पर ही रह जायेगा।
मिट्टी है मिट्टी में समा जायेगा।
प्रकृतिमय रखो तुम सदा देह यह।
विकृतियों से तुमसे खफा हो जायेगा।।४।।

देह ठंडा गरम स्पर्शवाला ही है
मीठा-खट्टा सु-दुर्गंध वाला ही है।
गोरा-काला रू पीला बने देह ही।
तुम न हो स्पर्श रस रूप औ गंध भी।।५।।

लाड़ और प्यार से मत बिगाड़ो इसे।
काम तुम्हारे वह फिर नहीं आयेगा।
मत भूखा भी रक्खो उसे व्यर्थ ही।
दुबला हो काम तुम्हारे ना आयेगा।।६।।

उसको प्रकृतिस्थ रक्खो अरे ज्ञानियों।
मत विकृतिस्थ होने दो रे ज्ञानियों।
ना ही राजस वा तामस बनो तुम कभी।
नित्य सात्विक बनो, साधु बनो ज्ञानियों।

होंगे साधु तो यह देह स्वस्थ रहे।
तुम भी स्वस्थ रहोगे सदा शांतिमय।
स्वर्ग और मोक्ष भी फिर नहीं दूर हैं।
तुम त्रिलोकपति बन बनोगे अक्षय।।

- श्री मनोहर मारवडकर
सर्वधर्म, १७ (ब) महावीर नगर,
नागपुर-१

आगम चक्षु हैं

मूर्ति की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कर वेदी पर विराज़मान कर देना प्रतिष्ठा नहीं है। सतत भगवान के गुणों का चिन्तवन करना, स्मरण करना ही प्रतिष्ठा है। आगम चक्षु हैं और पुस्तकालय ज्ञान मन्दिर। आज हमें स्वाध्याय, आगम-संरक्षण और ज्ञान मंदिरों के निर्माण की महती आवश्यकता है।

- आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि

चेतन आत्मा का जीर्णोद्धार करें

हम मंदिर और मूर्तियों का जीर्णोद्धार तो बहुत कर चुके हैं, यह सब जड़ पदार्थ हैं। अब हमें अपनी चेतना-आत्मा का जीर्णोद्धार करना है। इसके लिए संग्रह की नहीं, त्याग की आवश्यकता है। हम जब परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी मुनिराज के बताए तप, त्याग, ध्यान के मार्ग पर चलेंगे तभी हमारी आत्मा का कल्याण होगा, मोक्ष-मार्ग प्रशस्त होगा और सच्ची सुख, शान्ति प्राप्त होगी।

- आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज

जग-जीवन कितना नश्वर है

जग-जीवन कितना नश्वर है।
हुए परिधि पर अब तक धावन,
किए प्रयोग सुलभ सब साधन,
केन्द्र तलक हम पहुँच न पाए, कितना दौड़े नहीं खबर है।
जग-जीवन कितना नश्वर है।।१।।

जी बहलाय लख आकर्षन
कर्म चक्र से चलता जीवन,
धर्मचक्र की नहीं खबर ली, मिथ्यामति घिरती सत्त्वर है।
जग-जीवन कितना नश्वर है।।२।।

हमने निज को सदा बिसारा,
अपनाया जो नहीं हमारा,
बेसुध होकर चले निरन्तर, नहीं लखा नीचे गह्वर है।
जग-जीवन कितना नश्वर है।।३।।

नाते-रिश्ते हैं सब झूठे,
लगते हैं वे बड़े अनूठे,
अंत समय छूटे अपना तन, बोले सभी सत्य सस्वर है।
जग-जीवन कितना नश्वर है।।४।।

करते सुधी संत सल्लेखन,
धरते शुक्ल ध्यान अन्तर्मन,
जन्म-मरन से पिंड छूटता, पाते धाम जहाँ जिनवर है।
जग-जीवन कितना नश्वर है।।५।।

- **विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया**
- मंगल कलश
३९४, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़- २०२००१

आत्म निवेदन

मन इन्द्रियों में कुछ ऐसा रमा, विषयों से नहीं हट पा रहा है।
तट पा सकने के प्रयत्न मिटे, गहराई में डूबता जा रहा है।
मद-मत्सर-मोह के फन्द फँसा, जड़ जीव बड़ा अकुला रहा है।
कुछ जोर नहीं चलता अपना, यह जन्म अकारथ जा रहा है।।१।।

भजता रहता अविवेक सदा, सब खोकर भी बना विश्व-विजेता।
अपनी ही लगाए रहा रट मैं, अहमन्यता से सदा रुपसि सेता।
मन पाप-पयोनिधि-पंक धँसा, गुरु गर्व की नाव रहा नित खेता।
अनमोल गँवा दिया जीवन यों, भ्रमता ही रहा, नहीं चेतन चेता।।२।।

क्षण भंगुर गात पै मुग्ध हुआ, विष-वासना में मन खो गया है।
जड़-जंगम में भ्रमता ही रहा, प्रभुता में रमा, मद हो गया है।
शुभ कर्म का मर्म न जाना कभी, बस, बीज कुकर्म के बो गया है।
संग मत्सर के दिवा-स्वप्न सजा, अघ-ओघ लपेट के सो गया है।।३।।

करुणाकर हो, करुणा करदो, भव के भ्रम जाल से भाग सकूँ।
षट राग के राग न मोह सकें, ध्रुव धर्म न भूल से त्याग सकूँ।
विषयों में प्रसक्त रमूँ न कभी, वश में कर क्रोध का नाग सकूँ।
कभी वासना-वह्नि न क्षुब्ध करे, महा मोह- निशीथ में जाग सकूँ।।४।।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर (उ.प्र.)

क्षणिकाएं

संवेदना शून्य हो गई किस कदर
असहाय को सहायता देना बना दुष्कर
जो रहे समर्पित जीवन भर हमारे लिये,
उनकी उपेक्षा की हमने सीना तानकर।।

x x x

निर्वाण की चाहना जिन्हें थी रही
उत्तराधिकारी उनके निर्माण किये जा रहे
परिग्रह-संचय बना है लक्ष्य हमारा,
श्यामधन अपना श्वेत किये जा रहे।।

x x x

अहिंसा यात्रा पर हम जा रहे
अहिंसा ग्राम हम हैं बना रहे
हिंसा से होंगे हम कितने विरत,
वक्त बतायेगा, प्रज्ञावान बढ़े जा रहे।।

x x x

नोट गिनते-गिनते उंगलियां थकती नहीं
लक्ष्मी की शक्ति का प्रभाव यही
तिजोरी भर जाये अपनी चाहे जितनी
तृष्णा अपनी पर कभी घटती नहीं।।

- रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

ब्रह्मचारी आदर्श त्यागी बनें

ब्रह्मचारियों के लिए मेरा कहना है कि वे अपनी सीमा में रहकर के ही निष्परिग्रहता का परिचय देते हुए समाज को परिग्रह से उबारने का प्रयास करते रहें। वे "सादा जीवन और उच्च विचार" रखें। अपनी सादगी को भूलें नहीं, वैराग्य को भूले नहीं। गांधी जी जैसे सादगी से घुटने तक पहिनकर रहते थे, उसी प्रकार पहना करें। अपनी मर्यादा कायम रखें। त्यागी यदि मर्यादा भंग करता है तो गृहस्थ उससे भी ज्यादा करता है क्योंकि उसकी कोई मर्यादा होती ही नहीं है। संयम की रेखा तो हमारी रहती है। ब्रह्मचारी यदि एक दो प्रतिमा वाला ही हो और उसके पास सादगी हो तो पूरा समाज उसकी ओर आकृष्ट हो सकता है। यदि आगे की प्रतिमाएं ले लें किन्तु सादगी नहीं रखें, पैसे और लोभ लालच के साथ रहें, मोटर गाड़ी के साथ आना जाना हो, तो गड़बड़ है। आज तो सबसे ज्यादा मोटर गाड़ियों का उपयोग होने लगा है। ब्रह्मचारियों से मेरा कहना है कि बहुत आवश्यक हो तभी वाहन में बैठो। अब तो कोई रेल या बस से भी नहीं जाता। ए.सी. कार चाहिए। आज त्यागी सबसे ज्यादा फोन करने वाले हो गए हैं। किस आधार पर इनके फोन चलते हैं। ये कौन हैं ? क्या उनके पास कोई दुकान-मकान है? किसलिए उनको फोन रखने की आवश्यकता पड़ती है ? त्यागी को अपनी मर्यादा कायम रखनी अनिवार्य है।

ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को ऐसे वस्त्र पहिनने चाहिए जिनमें से भीतरी अंग नहीं दिखे। उन्हें टिनों पॉल रानी पॉल आदि कभी नहीं लगाने चाहिए। आज के त्यागियों को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे कोई रईस आ रहा हो। ऐसा क्यों है? वस्त्र स्वच्छ, साफ और निश्चित रखिए। इसमें कोई बाधा नहीं है। पर त्यागियों के लिऐ वस्त्र कोई शोभा नहीं है।

- आचार्य श्री विद्यासागर महाराज (एक प्रवचनांश)

जिनवाणी

तं वत्थुं मुव्यं जं पडिउपज्जये कसथिग्गी।
तं वत्थुं मल्लिरज्जो जत्थुवसम्मो कसायाणं।।

(जिस वस्तु से कषाय उत्पन्न हो उसे छोड़ देना चाहिये, और जिससे कषाय शान्त हो उस वस्तु से सम्बन्ध रखना चाहिये।)

श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, सोमवार, २४ मई, २००४ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के लखनऊ स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी की वन्दना के साथ श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। कार्यक्रम का संचालन संयुक्त मंत्री श्री रमाकान्त जैन ने किया। सर्वप्रथम इस पर्व के ऐतिहासिक महत्व तथा इस दिन २८ वर्ष पूर्व १९७६ ई. में स्थापित इस शोध पुस्तकालय के सम्बन्ध में समिति के महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन, जो अस्वस्थता के कारण उपस्थित नहीं हो सके थे, के आलेख 'जयति श्रुतदेवता' का वाचन हुआ। डॉ. पूर्णचन्द्र जैन और श्री भगवान भरोसे जैन ने इस पर्व के परम्परागत महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ. शशि कान्त ने अपने उद्‌बोधन में शास्त्रों का स्वाध्याय युक्तियुक्त ढंग से करने पर बल दिया। चर्चा में सर्वश्री राकेश जैन, डी. के. जैन, लूणकरण नाहर और नरेश चन्द्र जैन ने भाग लिया। श्री भगवान भरोसे ने द्वादशांग-वाणी-वन्दना और श्री लूणकरण नाहर ने भजन प्रस्तुत किये। जिनवाणी की स्तुति के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। श्री संजय नाहर ने प्रभावना वितरण का पुण्य लाभ लिया।

स्वयंभू पुरस्कार-२००४

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष २००४ के **स्वयंभू पुरस्कार** के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००४** तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में रु. २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर, २००० से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियां सम्मिलित नहीं की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र-व्यवहार करें।

ज्योति अमर है

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावरिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १६वीं पुण्यतिथि पर उनका पुनीत स्मरण करने और वर्तमान राष्ट्रीय परिदृश्य पर चर्चा हेतु वयोवृद्ध साहित्यकार श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' की अध्यक्षता में संगोष्ठी हुई। संचालन श्री रमाकान्त जैन ने किया।

वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति और श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण, दीप प्रज्ज्वलन और डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। Frown/ संतर्जन के सम्पादक डॉ. शशि कान्त ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए उन इतिहास-मनीषी की पुण्यतिथि पर वर्तमान राष्ट्रीय परिदृश्य पर चर्चा-चिन्तन की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। श्री रमा कान्त ने स्वयं इतिहास हो गये इतिहास-मनीषी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दिया तथा डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने 'ज्योति पुंज ज्योति प्रसाद जी तुम्हें शत बार नमन है" काव्यांजलि प्रस्तुत की। साथ ही "यह वैसाखी वामदलों की" रचना द्वारा वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य पर कटाक्ष किया। डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, श्री नरेश चन्द्र जैन, श्री धर्मानन्द तिवारी, श्री बी.डी. अग्रवाल, श्री मनोज कुमार जैन और डॉ. अवधेश अग्रवाल ने श्रद्धेय डाक्टर साहब से सम्बंधित अपने प्रेरणास्पद संस्मरण सुनाते हुए तथा भारतीयत्व और युक्तियुक्त चिन्तन की प्रखर संवाहक मासिक पत्रिका Frown/ संतर्जन की सराहना करते हुए वर्तमान परिदृश्य पर अपने उन्मुक्त विचार व्यक्त किये। श्री धर्मानन्द तिवारी ने कहा कि "डाक्टर साहब इतिहास नहीं हुए, अपितु उनकी सुयोग्य संतति द्वारा उनकी ज्योति अमर है।" हास्य-व्यंग्य कवि श्री अनिल बांके ने जहाँ अपनी "अन्धे के हाथ में जो लगी बटेर, गीदड़ भी अपने को समझ रहे शेर" जैसी रचनाओं द्वारा वातावरण रससिक्त किया, वहीं बेबी पलक ने हावभावपूर्ण देश वन्दना "हमारा प्यारा भारतदेश" तथा बेवी आकांक्षा एवं अरुषा ने 'इतिहास-संदेश' रचना प्रस्तुत कर श्रोताओं को मनमुग्ध किया। अध्यक्ष श्री मानस जी ने डाक्टर साहब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपनी ओजपूर्ण रचना- "मुझे न छेड़ो, मेरी मुट्ठी में आंधी-तूफान भरे हैं" प्रस्तुत की।

अस्वस्थतावश डाक्टर साहब के अनुज श्री अजित प्रसाद जैन संगोष्ठी में उपस्थित नहीं हो सके। उनके स्वास्थ्यलाभ की कामना की गई। तदनन्तर आज़ाद हिन्द सरकार के गठन पर अंगीकार किये गये राष्ट्रगान "शुभ सुख चैन की बरखा

बरसे, भारत भाग है जागा। सूरज बनकर जग में चमके, भारत नाम सुभागा" के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

- अंशु 'अमर' जैन

-ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

स्वयं आत्म-पथ अपना पाना होगा

हे युग मानव, उठो-उठो, तुम अपने को अब जानो।
सत्य रूप जीवन सत्ता को देखो, तुम पहचानो।।

पर-सम्पादित वृहत् शास्त्र उनकी विस्तृत टीकाएं,
शत-शत कोणों से अनुमानित संदर्भित व्याख्यायें,
कौन उन्हें पढ़ पाया पूरा, कौन समझ पाया है।

शास्त्र-प्रसारित उलझा-सुलझा ज्ञान व्यर्थ अनुमानो।
सत्य रूप जीवन सत्ता को देखो, तुम पहचानो।।

महावीर का धर्म अंकिंचन, त्यागा सब कुछ, बने दिगम्बर।
हुए ध्यान लवलीन, बने फिर आत्म विजेता तीर्थंकर।
धर्म के ठेकेदार, किन्तु हैं निपुण द्रव्य अर्जन में
नीलामी पर चढ़ा उन्हें भी, धन अर्जित करते, सच जानो।
सत्य रूप जीवन सत्ता को देखो, तुम पहचानो।।

मूढ़ मान्यताएं युग-युग की धर्म की ठेकेदारी,
पथ अवरोधक भ्रमित ज्ञान की बढ़ती साझेदारी,
कभी न पथ-निर्देश तुम्हारा ये सब कर पायेंगे,
स्वयं मिटेंगे और तुम्हें भी ले डूबेंगे, जानो।
सत्य रूप जीवन सत्ता को देखो, तुम पहचानो।।

महावीर ने स्वपथ स्वयं ही खोजा था जीवन में।
कठिन तपस्या करी, प्रकाशित स्वयं हुए आतम में।
सतत साधना तप प्रहार से आत्म-ज्योति पायी थी।
तुमको स्वयं आत्म पथ अपना पाना होगा मानो।
सत्य रूप जीवन सत्ता को देखो, तुम पहचानो।।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'

डी ११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

साहित्य-सत्कार

मुम्बईवासी मध्य भारत के दिगम्बर जैन : प्रस्तुति श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन; प्र. सन्मति ट्रस्ट, नरेन्द्र सदन, ४ माला, ३६ डी, मुगमार क्रास लेन, मुंबई- ४००००४; पृ. ६१; मूल्य रु.११०/-

प्रस्तुत कृति में प्रारम्भ में आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के एक प्रवचन का सार तथा (स्व.) डॉ. दरबारीलाल कोठिया का देवदर्शन विधि पर एक निबन्ध दिया गया है, तदनन्तर मुंबई के दि. जैन मन्दिरों व चैत्यालयों की सूची तथा ३५६ मुंबईवासी मध्यभारत के दिगम्बर जैनों के नाम व पते दिए गए हैं। इसके साथ ही मुंबई महानगर की अन्य आवश्यक सूचनाएं जैसे अस्पताल, एम्बुलेंस, रेल पूछताछ, दिन रात के केमिस्ट, चिकित्सा के लिए आर्थिक सहायता करने वाले ट्रस्ट, धर्मशाला, बोर्डिंग आदि के पते देकर पुस्तक को और उपयोगी बना दिया गया है। शास्त्रों में वर्णित जीवनोपयोगी कुछ अन्य जानकारियां भी संक्षिप्त रूप में दे दी गई हैं।

यह भी जानकारी दी गई है कि मध्यभारत से सर्वप्रथम कौन आया यह तो खोज पाना संभव नहीं हुआ, किन्तु सर्वप्रथम लिखित प्रमाण बड़ी देवरीवासी (सागर) पं. नाथूराम प्रेमी का मिला है जो सन् १६०८ में बम्बई प्रांतिक महासभा में क्लर्क के पद पर नियुक्त होकर बम्बई आए थे। पुस्तक संग्रहणीय है।

All India Jain Temples and Tourist Places: Editor-B. C. Nagaraj; Publisher-Sri Bharatvarshiya Digambar Jain Sabha, Aishbagh, Lucknow-226004 and others; pg. 8+94; 2001; Price Rs. 40/-

The information about Jain Temples contained in this book appears to have been collected from a much earlier publication and it does not make mention of many notable temples constructed during the last decade in many Teertha Kshetras and cities. The Swetamber temples have generally been ignored except for a very scanty mention of such temples in Gujarat, Rajasthan and a few other places. The book should, therefore, have been more appropriately entitled as "All India Digambar Jain Temples --"

The book contains some strange clarifications, e.g., P. 7. under (7) Digambar Jain Mandir Koocha Seth, it is stated that the seth who

constructed it hailed from Koocha, whereas 'Koocha' is a very common word of Hindi language and means 'lane'. The lane in which this temple exists was called 'Koocha Seth' because it contained the residential and other buildings of the seth after whom the lane was named. The book also abounds in printing errors which render reading unintelligible at places, e.g., "Shri Mannelal Thyag Dharam Shala Bar Baugh, Lucknow" has been printed for "Shri Munney Lal Kagzi Jain Dharam Shala, Charbagh, Lucknow". The publishers would do well to pay more attention to accurate printing and bring information about Jain Temples uptodate in the next edition.

Nevertheless the book contains useful information and its price is moderate. It is worth keeping in libraries.

भक्तिसंगीत समयसार : ले. रामजीत जैन, एडवोकेट, ग्वालियर; प्राप्ति स्थान- पं. ज्ञानचंद्र जैन साहित्य बिक्री केन्द्र सोनागिर, (दतिया); प्रथम संस्करण-२००४; पृ.४३; मूल्य रु. २१/-

सुप्रसिद्ध साहित्यकार नीरज जी ने पुस्तक की प्रस्तावना में ठीक ही लिखा है "-आत्म कल्याण के लिए भक्ति का सहारा अनिवार्य माना गया है- संसार को आत्महित का मार्ग दिखाने वाले तीर्थंकर भगवान भी-जैनेश्वरी दीक्षा लेते समय 'ऊँ नमः सिद्धम्, का उच्चारण करके, सिद्ध परमात्मा की भक्ति करके अपनी मुक्ति मार्ग की यात्रा प्रारंभ करते हैं।"

प्रस्तुत कृति में जैन समाज के वयोवृद्ध सिद्धहस्त लेखक श्री रामजीत जी जैन ने जिनेन्द्र भक्ति को वीतरागता के प्रति राग की संज्ञा देते हुए उसे परम्परा से मोक्ष का कारण बताया है। जिनेन्द्र भगवान की संगीत बद्ध गेय पूजा भक्ति से रागी भक्त का वीतरागता के प्रति राग और अधिक मुखर हो उठता है।

इस कृति के शीर्षक में 'समयसार' शब्द की क्या सार्थकता है, यह स्पष्ट वहाँ होती। शीर्षक से यह भ्रान्ति होती है कि कदाचित् इसमें भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य कृत **समयसार** का भक्तिपरक गेय पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया होगा पर इसका **समयसार** ग्रंथ से कोई संबंध नहीं है। तथापि इसमें जिनेन्द्र भक्ति का बड़ा सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अन्तर्द्वन्द : ले.परमात्म प्रकाश भारिल्ल; प्राप्ति स्थान-श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापू नगर, जयपुर-३०२०१५; प्र.वर्ष-२००४; पृ.-३४; मूल्य रु. ६/-

समीक्ष्य कृति में विद्वान लेखक ने एक ७५ वर्षीय वृद्ध व्यक्ति के मन मस्तिष्क में परिवार के निचली पीढ़ियों के सदस्यों से संवादहीनता से उत्पन्न हुए अन्तर्द्वन्द का सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया है। जब उसे अपने पूर्वकृत पापों का, आर्त-रौद्र ध्यान, स्वार्थी भावना, अनैतिक कार्यों तथा विवेकहीन भक्ष्याभक्ष्य सेवन का ध्यान आता है तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

ऐसे साठोत्तर वृद्धजनों को लेखक ने सरल सुबोध शैली में दिशाबोध देने का प्रयास किया है कि भूत को भूलो और वर्तमान को संभालो, भविष्य स्वतः संभल जाएगा। पुस्तिका रोचक है तथा वृद्धजनों को इसे पढ़कर अपनेपन का बोध होगा।

स्थानकवासी जैन परम्परा का इतिहास : ले. डॉ. सागरमल जैन व डॉ. विजय कुमार, प्र. श्री पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई.टी.आई. रोड, करौंदी, वाराणसी-२२१००५; प्र. वर्ष-२००३; पृ.-५६५, मूल्य रु. ५००/-

श्वेताम्बर परम्परा में मूर्ति में आई विकृतियों से खिन्न होकर मूर्ति पूजा के विरुद्ध अपना स्वर मुखर करने वालों में पोरवाल जाति में अरहदवाड़ा (सिरोही) में जन्में क्रांतिदर्शी लौंकाशाह (वि.सं.-१४७५-१५४१) प्रथम व्यक्ति थे। वे तपागच्छ के आ. जीवसागर सूरि के यहां लेहिया का काम करते थे। एक मान्यता के अनुसार उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली थी तथा तीन मास की दीक्षा पर्याय और तीन दिन के अनशन के द्वारा देवलोक गमन किया था किन्तु अन्यों का मानना है कि वृद्धावस्था के कारण उन्होंने दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। लौंकाशाह की कृतियों के रूप में **लौंकाशाह के ३४ बोल, अट्ठावन बोल की हुण्डी,, तेरह प्रश्न और उनके उत्तर** तथा किसकी परम्परा प्रसिद्ध हैं।

इस विशाल ग्रंथ में परिशिष्ट सहित तेरह अध्याय हैं जिनमें प्रथम अध्याय में जैन धर्म की विकास यात्रा से प्रारंभकर दूसरे में भगवान ऋषभदेव से महावीर तक तथा तीसरे में आर्य सुधर्मा से लौंकाशाह तक की विकास यात्रा का वर्णन किया गया है। परवर्ती अध्याय में में आ. जीवराज जी तथा आ. लवजी ऋषि और उनकी परम्परा, धर्म सिंह जी का दरियापुरी सम्प्रदाय, आ. धर्म दास जी की परम्परा में उद्भूत गुजरात के सम्प्रदाय, आ. धर्मदास जी की पंजाब, मारवाड़ मेवाड़ एवं मालवा

की परम्पराएं, आ. मनोहरदास जी और उनकी परम्परा तथा आ. हरजीस्वामी तथा उनकी परम्परा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ६२ पृष्ठीय परिशिष्ट में लौंकाशाह की कृतियों का विशदपरिचय दिया गया है तथा उनकी **'अट्ठावन बोल'** की हस्तलिखित कृति की फोटो कापी दी गई।

विद्वान लेखकद्वय स्थानकवासी सम्प्रदाय के इस सर्वांगीण इतिहास को सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर प्रस्तुत करने के लिए बधाई के पात्र हैं। तथापि इसमें आ. तुलसी-महाप्रज्ञ के तेरापंथ सम्प्रदाय, जिसका उद्भव स्थानक वासी साधु भीखम जी से ही हुआ, का कोई उल्लेख न किया जाना कुछ खटकता हे। सबसे बड़े स्थानकवासी समाज के आचार्य सम्राट डॉ. शिवमुनि जी व आ. उमेश मुनि जी तथा वर्तमान के अन्य आचार्य हीराचंद जी आदि इन आचार्यों की परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं यह भी स्पष्ट किया जाता तो उसकी उपादेयता और अधिक बढ़ जाती। ग्रंथ संग्रहणीय है।

— अजित प्रसाद जैन

स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड) : लेखक डॉ. कपूरचंद जैन एवं डॉ. ज्योति जैन; प्र. प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए, निकट जैन मन्दिर, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१; २००३ ई.; पृ. ४२६+५१; सचित्र; मूल्य रु. २००/-

आर्ट पेपर पर मुद्रित इस सचित्र नयनाभिराम ग्रन्थ में विद्वान लेखकद्वय ने अकथ परिश्रम कर विविध साधन स्रोतों से सामग्री जुटा देश के स्वातन्त्र्य-समर में जैन धर्मावलम्बियों के योगदान को मुखरित करने के सद्उद्देश्य से उपक्रम-चार में बीस शहीदों और उपक्रम पाँच में ६५६ स्वतन्त्रता सेनानियों, जिन्होंने जेल की सजा भुगती, का परिचय संजोया है। इस खण्ड में उन्होंने विशेषतः मध्यप्रदेश, (छत्तीसगढ़ सहित), उत्तर प्रदेश (उत्तरांचल सहित) तथा राजस्थान के देशभक्तों को स्थान दिया है। इस विषय का परिमाण इतना अधिक है कि उपर्युक्त प्रदेशों में हुए उन सभी जैन जनों का, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता हेतु अपना तन-मन-धन अर्पित किया था, विवरण पर्याप्त प्रामाणिक जानकारी के अभाव में दिया जाना, काफी दुष्कर है। तदपि यह देखकर विस्मय हुआ कि जिन ग्रन्थों का इस ग्रन्थ के प्रणयन में उपयोग हुआ उनमें ही दी गई अनेक व्यक्तियों के सम्बन्ध में सूचना इसमें सम्मिलित होने से रह गई तथा इन्हीं प्रदेशों के कई अन्यथा नाम चीन्ह व्यक्ति, यथा-महात्मा भगवानदीन, क्रान्तिकारी ऋषभचरण जैन, श्री नाथूराम 'प्रेमी', पं. जुगलकिशोर मुख्तार,

पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, प्रभृति जिनका देश की आजादी और स्वदेशी प्रचार के आन्दोलन में सक्रिय योगदान रहा, भी विद्वान लेखकों की दृष्टि से छूट गये।

पाँच उपक्रमों में विभाजित इस ग्रन्थ में संकेत सूची और सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के साथ-साथ सात परिशिष्टों में अन्य महत्वपूर्ण प्रासंगिक ज्ञानवर्धक सामग्री संजोयी गई है। प्रथम उपक्रम 'बोलते शब्द चित्र' में जहाँ प्रारंभ से सन् १९४२ ई. तक के जैन इतिहास को २१ पृष्ठों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया, वहीं उपक्रम-दो में १५ पृष्ठों में स्वतंत्रता आन्दोलन का सिंहावलोकन और उपक्रम-तीन में ५ पृष्ठों में सन् १८५७ ई. से लेकर १५ अगस्त १९४७ ई. पर्यन्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण घटनाओं को क्रमवार संजोया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ का कार्य करेगा, इसके प्रणयन हेतु विद्वानद्वय साधुवाद के पात्र हैं।

प्रारम्भिक नय प्रवेशिका : संकलन-सम्पादन ब्र. संदीप 'सरल', प्र. अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)-२२२२७९; द्वि. संस्करण २००४; पृ. ४०

'प्रमाणनयैरधिगमः' अर्थात् प्रमाण और नयों के द्वारा वस्तु तत्त्व का ज्ञान होता है, इस तथ्य को समझने वाले ब्रह्मचारी जी ने नय ज्ञान से अनभिज्ञों को इसका प्रारम्भिक ज्ञान कराने के सद्उद्देश्य से इस लघु पुस्तिका में पूर्वाचार्यों द्वारा किये गये तद् विषयक विवेचनों और क्षु. जिनेन्द्र वर्णी जी के ग्रन्थ **नयदर्पण** का आश्रय लेकर इस विषय को प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत किया है और अन्त में ९ चार्ट भी प्रमाण भेद और नय भेदों को समझने हेतु दिये हैं। अच्छा होता यदि सामान्य पाठकों को यह जटिल विषय समझाने हेतु कुछ और सरल-सुबोध शैली का सहारा लिया होता।

प्रारम्भिक प्राकृत प्रवेशिका : संकलन एवं सम्पादन ब्र. संदीप भैया 'सरल'; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)- २२२२७९; पृ. ३२

संस्थान के दस दिवसीय प्राकृत भाषा शिक्षण शिविर में शिविरार्थियों के उपयोगार्थ ब्रह्मचारी जी ने इस लघु पुस्तिका का प्रणयन किया है। इसमें **समणसुत्तं, नियमसार, रयणसार, भाव पाहुड, चारित्र पाहुड, मोक्ष पाहुड, लिंग पाहुड, बोध पाहुड, सील पाहुड, द्रव्य संग्रह, कार्तिकेयानुप्रेक्षा** और **मूलाचार** नामक ग्रन्थों से प्राकृत गाथाएं लेकर उनका सरल हिन्दी रूपान्तर उन्हें समझने हेतु दिया है। साथ ही प्राकृत भाषा और उसके व्याकरण आदि का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु आवश्यक जानकारी दी है। यह पुस्तिका प्राकृत भाषा सीखने वालों के लिये उपयोगी है।

तपोनिधि : सम्पादन डॉ. नीलम जैन; प्र. श्री सम्मेदशिखरजी विकास समिति, लुहाड़्या भवन, सासनी (हाथरस), उ.प्र.; चतुर्थ संस्करण २००४; पृ. ६४; सचित्र; मूल्य संयम।

पंडित सुमेरचन्द्र दिवाकर की कृति **'चारित्र चक्रवर्ती'** का आश्रय ले चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर मुनिराज का आर्ट पेपर पर सचित्र नयनाभिराम जीवन चारित्र इस पुस्तिका में उनकी १३१वीं जन्म जयन्ती (दिव्यावदान महोत्सव) पर प्रकाशित किया गया है। पुस्तक महाराज श्री के श्रद्धालु भक्तों व उनके सम्बन्ध में जिज्ञासा रखने वालों के लिये उपयोगी है।

हवा कुछ और कहती है (ग़ज़ल) : प्रणेता श्री भोलानाथ 'अधीर'; प्र. प्रेमा प्रकाशन, ५६९-क/५१, स्नेहनगर, आलमबाग, लखनऊ-५; २००३ ई.; पृ. ७२; मूल्य रु. ८०/-

हिन्दी काव्य की विभिन्न विधाओं में सिद्धहस्त रचनाकार श्री भोलानाथ 'अधीर' द्वारा प्रणीत ५१ ग़ज़लों का संकलन वर्तमान में इतस्ततः दृष्टिगत विसंगतियों का दर्पण है। संवेदनशील कवि ने उनके प्रति अपने मन में उठे क्षोभ को सरल सुबोध शब्दों द्वारा इन ग़ज़लों के सहारे स्वर दिया है। अभिव्यक्ति की धार ऐसी पैनी है कि वह पाठक का अन्तर्मन छुए बिना नहीं रहती। यथा-

झूठा नंबरदार हो गया बाबू जी।
सच, सचमुच लाचार हो गया बाबू जी।

** ** **

धैर्य आखिर किस तरह धर ले 'अधीर'
सन्त भी जब शस्त्र धारक हो गए।"

संवेदनशील पाठकों और काव्य रसिकों को यह कृति आनन्दित करेगी। इसके प्रणयन हेतु भाई अधीर जी साधुवाद के पात्र हैं।

भावना के सुमन : रचयिता श्री रामदेव लाल 'विभोर'; प्र. सुलभ प्रकाशन, १७, अशोक मार्ग, लखनऊ-१; २००१ ई.; पृ. ५१+१२; मूल्य रु. ५०/-

साहित्य की विविध विधाओं में सशक्त लेखनी चलाने वाले वरिष्ठ कवि श्री रामदेव लाल 'विभोर' की चौथी प्रकाशित इस काव्य कृति में कथ्य-वैविध्य, रस-वैविध्य और छन्द-वैविध्य की रंग-बिरंगी छटा समोये उनकी ५१ स्फुट रचनायें समाहित हैं। जैसा कि कवि ने 'अपनी बात' में लिखा है, उसने यथार्थ के धरातल

पर जो देखा, सुना, समझा और अनुभव किया, उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास लोकमंगल की कामना से किया है। कवि ने जीवनधारा को विमल करने का आह्वान किया है, वर्तमान विसंगतियों पर सशक्त चोट की है और आम आदमी एवं उसकी मजबूरियों पर भी दृष्टिपात किया है। यथा-

"हाँफते मजदूर सिर पर ईंट रख
बास-बल्ली के सहारे धूप में।
एक छोटी सी रकम की शर्त पर
जान पर ये खेल सतमंजिल चढ़े।

सरल प्रवाहमयी प्राञ्जल भाषा में निबद्ध यह कृति सभी काव्यरसिकों को आनन्ददायिनी होगी।

हर हर गंगे : रचयिता श्री रामदेवलाल 'विभोर'; प्र. प्रतिष्ठा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, कविता कुंज, ई-४०१३/२६, सेक्टर १२, राजाजीपुरम, लखनऊ; पृ. ११३+२२; मूल्य रु. ८०/-

भारतीय जनमानस की आस्था और श्रद्धा की पात्र चिर प्राचीन-चिर नवीन पावन पयस्विनी गंगा पर प्रस्तुत द्वादश सर्गीय प्रबन्ध काव्य का प्रणयन कवि ने भाव-विभोर होकर किया है। बचपन में अपनी माता के मुख से सुने 'हर हर गंगे' के बोल उनके मन पर इस प्रकार छाये कि वह उसके प्रति अपनी विनयांजलि अर्पित करने हेतु अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। मंगलाचरण के उपरान्त आविर्भाव से लेकर गंगासागर से मिलन तक की गंगा-यात्रा और कलिकाल में उसकी दुर्दशा का विविध छन्दों में, पौराणिक आख्यान, भौतिक-नैसर्गिक परिवेश और वैज्ञानिक ज्ञान की पृष्ठभूमि में कवि ने अपनी कल्पना के पुट देते हुए सरस-सरल प्रवहमान शैली में वर्णन किया है। कवि की आस्था है- "धूमिल मन को धवल करे, तन विमल करे हर हर गंगे। तृषित हृदय को तरल करे, सब कुछ करे हर हर गंगे।" और अब यह देखकर उसका मन दुखित है, "जुटे हैं तट पर लंपट-चोर, अमंगल कृति पर देते जोर। कुटिल मन, पाखंडी, वाचाल, कर रहे जन समूह में शोर।" गंगा-भक्तों के लिये ही नहीं, अपितु सभी काव्यरसिकों को आनन्दप्रदायी इस कृति के प्रणयन हेतु बन्धुवर विभोर जी साधुवाद के पात्र हैं।

- रमा कान्त जैन

समाचार विमर्श

युग प्रधान अब महात्मा

रतलाम, २५ अप्रैल, २००४- जैन श्वे. तेरहपंथ संघ के आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म.सा. को एक समारोह में महात्मा पद से विभूषित किया गया। उस समारोह स्थान को समवसरण लिखा गया। जैन मान्यतानुसार केवल ज्ञान उपरान्त परमात्मा (तीर्थंकर) जिस स्थान पर देशना देते थे उसे समवसरण कहते थे।

सभी जैन श्रमण वीतरागता, समता तथा अपरिग्रह की निरन्तर साधना करने वाले तथा विश्वकल्याण की भावना रखने वाले होने के कारण स्वतः महात्मा होते हैं। किन्तु अब तो कुछ मठाधीश महन्त और कथावाचक, यहाँ तक कि गृहस्थ भी, महात्मा कहलाए जाने लगे हैं (जैसे-महात्मा गांधी)। आजकल हमारे मुनियों में ही नहीं, आचार्यों तक में यश लिप्सा में नई-नई उपाधियों को अपने नाम के साथ जोड़ने की होड़ लगी है चाहे उनसे उनकी गरिमा में कोई अभिवृद्धि होती हो या न होती हो। यह भी उसका एक नमूना है।

सम्पूर्ण जैन वाङ्मय तथा परम्परा में 'समवसरण' शब्द केवल तीर्थंकर भगवन्तों की धर्म सभा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इस महामंडित पवित्र शब्द का आचार्यों, साधुओं की धर्म सभा के लिए प्रयोग करना हमारी दृष्टि में जिनेन्द्र भगवान के समवसरण का अवर्णवाद है।

मंगलं भगवदो वीरो मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइ जेण्ह धमोत्थु मंगलं।।

श्री कुंदकुंद भारती, नई दिल्ली-६७ द्वारा प्रकाशित 'प्राकृत विद्या' के जुलाई-दिसम्बर २००३ अंक के पृष्ठ २ पर "आचार्य कुन्दकुन्द का काल निर्णय" लेख के अंत में संस्कृत के सुप्रसिद्ध मंगल श्लोक का उपर्युल्लिखित प्राकृत रूप देखने को मिला। इससे भ्रम होता हैं कि यह मंगल श्लोक का संस्कृत के पूर्व का प्राचीन मूलरूप होगा, किन्तु जहाँ तक हमारा सीमित अध्ययन और जानकारी है, यह प्राकृत रूप हमें किसी प्राचीन शास्त्र में देखने को नहीं मिला। 'प्राकृत विद्या' के सम्पादक जी स्वयं प्राकृत भाषा के विद्वान हैं तथा लगता है कि यह प्राकृत अनुवाद भी उन्हीं का या अन्य किसी

आधुनिक विद्वान का किया हुआ है यद्यपि इसे अनुवाद के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

प्राकृत अब अध्ययन की ही भाषा रह गई है। इसका गहन अध्ययन प्राकृत भाषा में रचे गए प्राचीन शास्त्रों के समुचित अध्ययन के लिए आवश्यक है पर यह अब दीर्घकाल से बोलचाल की भाषा नहीं रही है तथा प्राचीन संस्कृत श्लोकों का प्राकृत भाषा में अनुवाद उनके और प्राचीन होने का भ्रम पैदा कर सकता है, जो हमारी दृष्टि में उचित नहीं है।

कुन्दकुन्द स्वामी के काल निर्णय के संबंध में श्वेताम्बर आचार्य राजेन्द्र सूरि जी कृत **राजेन्द्र अभिधान कोश** और पं. बलभद्र जी के हवाले से विद्वान सम्पादक जी ने आचार्य श्री का जन्म ई.पू. १०८ तथा समाधिमरण ई. पू. १२ में लिखा है।

श्वेताम्बर आम्नाय की मान्यता के अनुसार मुनि संघ के अनुरोध को स्वीकार करके अन्तिम श्रुत केवली भगवन्त भद्रबाहु स्वामी ने श्वेताम्बर आम्नाय के प्रथम आचार्य श्री स्थूलिभद्र को दस पूर्वों की वाचना दी थी तथा उनके द्वारा कोई चमत्कार दिखाए जाने से खिन्न होकर उन्हें शेष चार पूर्वों की वाचना देने से इन्कार कर दिया था।

इस मान्यता के समर्थन में किसी शास्त्रीय उल्लेख की हमें जानकारी नहीं है पर कुन्दकुन्द स्वामी ने तो **समय पाहुड़** की प्रथम गाथा में ही 'सुद केवली भणितं' लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि जैसा श्रुत केवली भगवन्त ने कहा उसे ही वे इस **समय पाहुड़** ग्रंथ में निबद्ध कर रहे हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी से **समय पाहुड़** की विषय वस्तु की वाचना लेकर इस ग्रंथ की रचना की थी, ठीक उसी प्रकार जैसे एक देश श्रुत के ज्ञाता आचार्य धरसेन से वाचना लेकर मुनिवर्य द्वय पुष्पदन्त और भूतबली ने सिद्धान्त ग्रंथ षट्खण्डागम की रचना की थी।

भद्रबाहु स्वामी का समाधिमरण वीर निर्वाण के १६२ वर्ष बाद ३६५ ई. पूर्व हुआ था। जैन अध्यात्म के मेरू शिखर ग्रंथ **समय पाहुड** का रचनाकाल इसी के आसपास होना चाहिए तथा यह ग्रंथ दिगम्बर जैन वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रंथ सिद्ध होता है।

बोध पाहुड़ में कुन्दकुन्द स्वामी ने अन्तिम श्रुतकेवली भगवन्त को अपना 'गमक गुरु' लिखा है जिसका अर्थ विद्वानों ने 'परम्परागत गुरु' लगाया है। परम्परागत गुरु तो भद्रबाहु स्वामी सभी परवर्ती आचार्यों के थे पर अन्य किसी ने

उन्हें अपना गमक गुरु नहीं लिखा। हमारी समझ में गमक गुरु से तात्पर्य ऐसे गुरु से है जो दीक्षा गुरु तो नहीं, पर वह विशिष्ट ज्ञानी गुरु है जिसके पादमूल में किसी शास्त्र विशेष की वाचना ली जाय, अध्ययन किया जाए।

यह भी संभव है कि कुन्दकुन्द स्वामी के नाम से विख्यात सभी ग्रंथ **समयपाहुड़** के रचयिता कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा रचित न होकर पहली-दूसरी शती के किसी अन्य आचार्य (जैसे पद्मनन्दि कोण्ड कुंद) द्वारा रचित हों जिनके साथ गिरनार की यात्रा का प्रसंग जुड़ा है।

कुन्दकुन्द स्वामी के साथ एक यह भी अनुश्रुति जुड़ गई है कि वे विदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के समवसरण में कुछ शंकाओं के समाधान हेतु गए थे, पर यह अनुश्रुति मात्र ही है। इसकी पुष्टि उनकी किसी रचना से नहीं होती।

हमारा स्वयं का तो यह भी मानना है कि जिन शासन के शुद्ध स्वरूप की प्रतिष्ठापना कर उसी को 'दिगम्बर जैन धर्म' नाम कुन्दकुन्द स्वामी ने ही दिया और इस प्रकार वे दिगम्बर जैन आम्नाय के प्रथम आचार्य हैं तथा उन्हीं से दिगम्बर जैन आम्नाय के आचार्यों-मुनियों की परम्परा का प्रारम्भ होता है। इसी उपकार के स्मरणार्थ मंगल श्लोक में गौतम स्वामी के बाद उनसे ही मंगल कामना की गई है।

समय पाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी ने मंगलाचरण में केवल सिद्धों को नमस्कार किया है। कदाचित् उनके समय तक परमेष्ठी नमस्कार मंत्र का द्विपदीय मूल रूप (नमो अरहंतानं, नमो सव्व सिधानं) जो कलिंग सम्राट खारवेल (दूसरी शती ई. पूर्व) के सुप्रसिद्ध हाथीगुम्फा लेख में उत्कीर्ण है प्रचलन में नहीं आया था। यह भी उनके दूसरी शती ई. पूर्व से काफी पहले होने का द्योतक है।

त्रिकाल चौबीसी मंदिर

गिरनार जी - पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा से भगवान नेमिनाथ की निर्वाण स्थली पर्वतराज गिरनार जी पर पहली टोंक पर स्थित बंडीलाल जी दिगम्बर जैन कारखाना द्वारा संचालित दि. जैन मंदिर के परिसर में त्रिकाल चौबीसी मंदिर बनाने का निश्चय किया गया है जो तीन मंजिला होगा। प्रथम मंजिल पर मूलनायक केवली अनिरुद्ध कुमार, शम्भू कुमार व प्रद्युम्न कुमार की मूर्तियां स्थापित होगी। दूसरी मंजिल पर मूलनायक आचार्य श्री धरसेन, पुष्पदंत व भूतबली की प्रतिमाएं तथा तीसरी मंजिल पर मूलनायक श्री गौतम स्वामी, सौधर्म स्वामी व जम्बूस्वामी की

प्रतिमाएं विराजमान की जाएंगी। १४ फरवरी को प्रातः मुनि पुंगव सुधासागरजी के सान्निध्य में श्री नरेशभाई दिल्ली वालों के करकमलों से उक्त त्रिकाल चौबीसी मंदिर का शिलान्यास प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी जिनेश भैया-अधिष्ठाता गुरुकुल जबलपुर ने विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न कराया।

प्रथम मंजिल की मूलनायक प्रतिमा श्री नरेशभाई की तरफ से तथा १२ अन्य प्रतिमाओं के लिए दानदातारों की तरफ से ३५ लाख रु. की घोषणा मुनि श्री के सान्निध्य में उसी समय हो गई।" (जैन गज़ट २१ मार्च, ०४)

इस समाचार को पढ़कर हमें थोड़ा विस्मय हुआ। इस प्रस्तावित तीन चौबीसी मंदिर की प्रस्तुत की गई रूपरेखा में तीन चौबीसी तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। कदाचित् वे तो स्थापित की ही जाएंगी (प्रत्येक मंजिल पर एक-एक चौबीसी के तीर्थंकरों की प्रतिमाएं) किन्तु उनकी स्थिति कदाचित् गौण ही रहेगी क्योंकि मूलनायक प्रतिमाएं प्रथम मंजिल पर गिरनार पर्वत से भगवान नेमिनाथ के अलावा मुक्त हुए तीन सामान्य केवलियों की, दूसरी मंजिल श्रुत के एक देश ज्ञाता आचार्य धरसेन तथा उनसे वाचना लेकर सिद्धान्त ग्रन्थ **षट्खंडागम** की रचना करने वाले मुनिवर्य पुष्पदंत-भूतबली की, तथा तीसरी मंजिल पर वर्तमान के अन्तिम तीन सामान्य केवलियों की। हमारी समझ में इस सम्पूर्ण मंदिर की मूलनायक प्रतिमा तो केवल भगवान नेमिनाथ की ही होनी चाहिए क्योंकि मूलनायक प्रतिमा के नाम से ही मंदिर विख्यात होता है।

अब अनेक सिद्धक्षेत्रों पर जहाँ से सामान्य केवली विशेष मोक्ष गए हैं उनकी प्रतिमाएं स्थापित करने की परम्परा चल पड़ी है। उस दृष्टि से शम्भू, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध केवली की प्रतिमाएं इस तीर्थ पर स्थापित करने तक तो गनीमत है, पर अन्तिम तीन केवलियों (गौतम, सुधर्मा, जम्बू स्वामी) की प्रतिमाएं इस क्षेत्र पर स्थापित करने की क्या तुक है, यह समझ में नहीं आता। आचार्य धरसेन गिरनार की ही एक गुफा में तपस्या करते थे तथा वहीं उन्होंने मुनिवर्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि को वाचना दी थी। अतः गुफा आकृति का कोई मंदिर बनाकर उसमें आचार्य धरसेन को अपने शिष्यद्वय को वाचना देते हुए एक झांकी के रूप में दिखाना तो आकर्षक होता पर तीर्थंकर मंदिर में उनकी प्रतिमाएं स्थापित करना एक नई परम्परा को जन्म देना है। प्रतिमा स्थापित होगी तो उनकी पूजा आरती भी तीर्थंकर प्रतिमाओं के समान की

जाएगी जो कदाचित् उचित न होगा क्योंकि जिनेन्द्र के मंदिरों में केवल तीर्थंकरों की ही पूजा-अर्चना की परम्परा रही है।

हम अति अल्पज्ञ हैं जबकि पूज्य मुनि श्री का आगम ज्ञान और दिगम्बर आम्नाय की प्राचीन परम्पराओं का ज्ञान कहीं अधिक होगा। फिर भी हम उनसे इस विषय पर पुनर्विचार करने का निवेदन करना चाहेंगे।

पार्श्व ज्योति का घूमता आईना

हमने **शोधादर्श**-५२ के अपने सम्पादकीय लेख 'धार्मिक पत्रकारिता' में जागरूक एवं सार्थक पत्रकारिता कैसी होनी चाहिए पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए 'पार्श्व ज्योति' के विद्वान सम्पादक जी द्वारा हम पर लगाए गए आरोपों पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था तथा उनसे क्षमा मांगते हुए इस विवाद के प्रकरण को अपनी ओर से समाप्त कर दिया था। विद्वान् सम्पादक जी ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप 'पार्श्व ज्योति' के मई अंक में फिर चार पृष्ठ लिख डाले हैं। चूंकि हम उनसे क्षमायाचना कर अपनी ओर से इस प्रकरण को समाप्त कर चुके हैं, अतः हम अब इस विषय पर शोधादर्श में कुछ भी नहीं लिखेंगे। हाँ, यदि विद्वान सम्पादक जी व्यक्तिगत पत्र द्वारा हमसे किसी प्रश्न का उत्तर चाहेंगे, तो हम यथाशक्य उनका समाधान करने का प्रयास अवश्य करेंगे।

- अजित प्रसाद जैन

महावीर पुरस्कार वर्ष २००४ एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००४

जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष २००४ के **महावीर पुरस्कार** के लिए जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की ३१ दिसम्बर, २००० के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक/शोध प्रबंध की चार प्रतियां दिनांक **३० सितम्बर, २००४ तक** आमंत्रित हैं। प्रथम स्थान प्राप्त कृति को रु. २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को **ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** रु. ५००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र-व्यवहार करें।

पन्द्रह अगस्त

- श्री रमा कान्त जैन

पन्द्रह अगस्त हमारा 'स्वतन्त्रता दिवस' तो है ही, किन्तु वह एक बलिदान दिवस भी रहा, इसकी स्मृति शायद ही कुछ को हो। नौ अगस्त सन् १९४२ ई. को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध 'भारत छोड़ो आन्दोलन' छेड़ा गया था और महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। गांधी जी और अन्य बड़े नेता तो तुरन्त गिरफ्तार कर नज़रबंद कर दिये गये थे और देशप्रेमी असंख्य उत्साही नौजवान अपने ढंग से उस आन्दोलन में प्राण फूंकने में जुट गये थे। कई को अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ी। यहाँ उस आन्दोलन में १५ अगस्त, १९४२ ई. को पुलिस की गोली खाकर अपने प्राण न्यौछावर करने वाले दो शहीदों- साताप्पा टोपण्णावर और उदयचंद जैन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित है।

शहीद साताप्पा टोपण्णावर-

साताप्पा टोपण्णावर का जन्म कर्णाटक राज्य के बेलगाँव जिले की तहसील मुरगुड में ग्राम कडवी शिवापुर में सन् १९१४ ई. में एक सामान्य जैन परिवार में हुआ था। उनके पिता भरमाप्पा किसान थे। सन् १९३० ई. में, जब साताप्पा मात्र १६ वर्ष के थे, गांधी जी के 'असहयोग आन्दोलन' से इतना प्रभावित हुए कि मुरगुड के एक 'स्वयं सेवक संघ' में अपना नाम लिखा उन्होंने अपने क्रान्तिकारी जीवन का श्रीगणेश कर दिया। वह पास-पड़ौस के ग्रामों में राष्ट्रीय जन-जागरण का कार्य करने लगे। अपने गांव शिवापुर में भी उन्होंने एक 'स्वयं सेवक पंथ' गठित कर लिया। उनकी इन गतिविधियों के कारण सरकारी अधिकारियों द्वारा उन्हें अनेक बार डराया-धमकाया गया, पर वह नहीं माने। सन् १९४० ई. में वह दो बार जेल में भी बन्द किये गये, किन्तु उनके उत्साह में कोई कमी नहीं आई, अपितु देशप्रेम-भावना दृढ़तर होती गई। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और 'करो या मरो' नारे की अनुगूंज शिवापुर में भी हुई। १२ अगस्त, १९४२ ई. को साताप्पा और उनके साथियों ने 'ग्राम-स्वातन्त्र्य' के नाम पर स्थानीय ग्राम पंचायत कार्यालय पर कब्जा कर लिया। इसकी खबर अधिकारियों को लग गई।

पन्द्रह अगस्त की प्रातःकाल ग्राम कडवी शिवापुर में साताप्पा के नेतृत्व में ५०-६० युवकों की एक टोली एक हाथ में तिरंगा झण्डा लिये श्यामलाल पार्षद रचित गीत "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।।'

गाती हुई और बीच-बीच में बुलन्द आवाज में 'वन्दे मातरम्' नारा लगाती हुई प्रभातफेरी निकाल रही थी। अकस्मात ५० बन्दूकधारी और १०-१५ लाठीधारी पुलिस बल ने आकर उस टोली को घेर लिया। संकट सम्मुख आया देख युवकों ने जयकारा लगाया- 'भारतमाता की जय'। एक पुलिस अधिकारी गरजा, "झण्डा नीचे करो, नहीं तो नाहक गोली खाओगे।" साताप्पा झुके नहीं, प्रत्युत आवेशपूर्ण शब्दों में उत्तर दिया, "चाहे जान भले ही चली जावे, झण्डा नीचा नहीं करेंगे।" अधिकारी इस उत्तर से चिढ़ गया। उसने मजिस्ट्रेट का हुक्म दिखाया और फिर चेतावनी दी। साताप्पा ने कड़ककर प्रत्युत्तर दिया, "प्राण गेलातरी बेहेत्तर, पण झेंडा खाली घेणार नाही, घेऊँ देणार नाही।" साथी युवक भी गर्ज़ना करने लगे-

"तिरंगी झेंड्याचा विजय असो।
स्वतंत्र भारताचा विजय असो।।"

अंग्रेज अफसर यह सुनकर आग-बबूला हो गया और उसने गोली चलाने का आदेश दे दिया। धांय...धांय....दो-तीन गोलियां चलीं, जो आगे खड़े साताप्पा को लगीं। उनकी छाती से रक्तधार फूट पड़ी और मुँह से 'वन्दे मातरम्'। वह गिर पड़े और घर लाते-लाते उनकें प्राण-पखेरू उड़ गये। उनके कई युवा साथी गिरफ्तार कर लिये गये और ग्राम पंचायत कार्यालय को पुनः अधिकार में ले लिया गया। इस वीर शहीद का पुण्य स्मरण करते हुए मराठी पत्र 'सन्मति' ने अगस्त १९५७ के अंक में लिखा था कि 'लगभग २८ वर्षीय चौड़े सीने का ऊँचा-पूरा उत्साही व पानीदार (तेजस्वी) साताप्पा कड़वी शिवापुरा का ही नहीं मुरगुड का भी भूषण और स्फूर्ति-स्थान बन गया था।...क्रूर काल ने उसके फलते-फूलते जीवन को छीन लिया, किन्तु उसकी हुतात्मा को तेजस्वी मरण दिया। कडवी शिवापुर ही नहीं भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में उन्होंने अपने को अमर कर लिया, इसमें सन्देह नहीं।'

शहीद उदयचंद जैन-

उदयचंद जैन का जन्म मध्यप्रदेश में मण्डला नगर के निकट महाराजपुर ग्राम में १० नवम्बर, १९२२ ई. को हुआ था। उनके पिता सेठ त्रिलोकचंद और माता खिलौना बाई थीं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा महाराजपुर में हुई। तदनन्तर १९३६-३७ ई. में आगे अध्ययन हेतु मण्डला के जगन्नाथ हाई स्कूल में प्रवेश लिया। बलिष्ठ शरीर, ऊँची कदकाठी वाले उदयचंद मेधावी छात्र होने के साथ-साथ एक ओजस्वी वक्ता भी थे। अपनी नेतृत्व क्षमता के कारण वह छात्र-संघ के अध्यक्ष भी चुने गये थे।

अगस्त १९४२ के आन्दोलन के समय उदयचंद जी आयु मात्र १९ वर्ष की थी। वह मैट्रिक के छात्र थे। मण्डला नगर में स्वतन्त्रता-आन्दोलन की लहर पहले से ही लहरा रही थी। ४ अगस्त, १९४२ ई. को जगन्नाथ हाईस्कूल के छात्रों ने हड़ताल कर कक्षाओं का बहिष्कार किया। साथियों से आगे के कार्यक्रम पर सलाह मशविरा करते रहने के कारण उदयचंद उस दिन अपने घर भी नहीं गये। अगले दिन १५ अगस्त को छात्रों ने नर्मदागंज से विशाल जुलूस निकाला। जिलाधीश कार्यालय पहुँचकर जुलूस सभा में परिवर्तित हो गया। जब उदयचंद सभा को सम्बोधित कर रहे थे पुलिस ने बर्बरता से लाठी चलानी शुरू कर दी। अनेक लोग पुलिस लाठी के शिकार हुए। जुलूस तितर-बितर हो गया। जब लोग भागने लगे उदयचंद के एक साथी गोपाल प्रसाद तिवारी ने उनसे कहा, ''कहीं ऊँचे स्थान पर खड़े होकर जनता को प्रदर्शन करते रहने को कहो, मैं भीड़ में घुसकर लोगों को इकट्ठा करता हूँ।'' तब उदयचंद कुएँ की पनघट पर चढ़ जनता से शान्तिपूर्ण प्रदर्शन जारी रखने का अनुरोध करने लगे। जनता पुनः इकट्ठी होकर नारे लगाने लगी। मजिस्ट्रेट मालवीय ने लोगों को घर चले जाने की चेतावनी दी, अन्यथा गोली चलाने की मंशा बताई। इस पर कुछ लोगों ने उन्हें पुलिस ज्यादतियों के लिये लताड़ा। उप जिलाधीश ने पुलिस को गोली चलाने का आदेश दे दिया। वीर उदयचंद ने अपनी छाती खोल दी, कमीज को फाड़ते हुए खींचा जिससे एक बटन टूट गया। उन्होंने पुलिस को ललकारा, ''गोली चला दी जाय वह उसे झेलने के लिए तैयार हैं।'' पुलिस की गोली चली और उनके पेट को चीरते हुए शरीर में घुस गई। 'भारतमाता की जय', 'तिरंगे झण्डे की जय' के साथ उदयचंद गिर पड़े और खून की नदी बह चली। लोग उन्हें उठाने दौड़े, पर पुलिस ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। लाठियों के स्ट्रेचर पर डाल बेहोश उदयचंद को शल्य चिकित्सा हेतु समीप स्थित शासकीय अस्पताल पुलिस ले गई। शल्य चिकित्सा के उपरांत भी उदयचंद होश में नहीं आये। रात भर तड़पते रहे और १९ की प्रातः वीरगति को प्राप्त हो गये। नगर के सभी वर्ग के लोग उनके दर्शन को अस्पताल दौड़ पड़े। उनकी शवयात्रा में नगर के सभी जाति-वर्ग के लगभग नौ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस वीर शहीद की स्मृति में मण्डला में उदय चौक पर त्रिकोणाकार लाल लाट का 'उदय स्तम्भ' बना है और नगर पालिका मण्डला द्वारा 'उदय प्राथमिक विद्यालय' संचालित है। जगन्नाथ हाईस्कूल में उनकी प्रतिमा स्थापित की गई है तथा उनके ग्राम महाराजपुर में समाधि बनाई गई है जहाँ प्रतिवर्ष १९ अगस्त को मेला लगता है।

- ज्योति निकुंज,
चारबाग, लखनऊ-४

मेरी अन्तिम अभिलाषा

गत अप्रैल मास में ही दो बार हार्ट अटैक (५/४ तथा २६/४) को पड़ जाने के उपरान्त अब मेरे १६ वर्ष पुराने हृदय रोग की जैसी गंभीर स्थिति होती जा रही है उससे स्वास्थ्य में किसी उल्लेखनीय सुधार की संभावना कम ही रह गई है। दृष्टि मंदता में उतरोत्तर वृद्धि से पढ़ना लिखना भी अल्पातिअल्प होता जा रहा है। लगता है जीवन के इस अन्तिम चरण का भी अन्तिम चरण निकट आ गया है। सो जीवन का अंत तो देर सबेर एक दिन होना ही है।

अब मेरी एक ही अन्तिम अभिलाषा है। मैने अपने धर्म और समाज से बहुत कुछ सीखा और पाया है। उनके उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मेरी एक यही अभिलाषा है कि जिनेन्द्र देव की अनुकम्पा से मुझमें इतनी शक्ति बनी रहे कि मैं अन्तिम श्वांस तक धर्म व समाज की कुछ न कुछ सेवा करता रह सकूं तथा यदि मेरे किसी सुकृत्य के फलस्वरूप मुझे पुनः नर भव प्राप्त हो तो मेरा जन्म जैनधर्म व जैन समाज में ही हो।

मेरे आदर्श महापुरुष भगवान महावीर स्वामी हैं। वे ही मेरे परम इष्ट हैं। श्वेताम्बर आम्नाय में संरक्षित एक अनुश्रुति के अनुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के चौथे प्रहर में तीर्थंकर महाप्रभु का अन्तिम धर्मोपदेश चल रहा था जिसे समवसरण में उपस्थित सभी श्रोतागण भाव विभोर हुए सुन रहे थे कि यकायक दिव्य ध्वनि का खिरना बन्द हो गया। तब श्रोताओं को पता चला कि भगवान का निर्वाण गमन हो गया। लोक कल्याण की ऐसी असीम भावना थी भगवान वर्द्धमान महावीर स्वामी की। भगवान के इस अन्तिम धर्मोपदेश के आधार पर ही **उत्तराध्ययन सूत्र** संकलित किया गया कहा जाता है।

- अजित प्रसाद जैन

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थ- भावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

-आचार्य अमितगति कृत **भावनाद्वात्रिंशतिका** से

भावार्थ- हे देव, मेरी आत्मा सदा सभी प्राणियों के साथ मित्रता, गुणीजनों में प्रमोद (प्रसन्नता) का भाव, कष्ट में पड़े व्यक्तियों के प्रति करुणा, और विपरीत आचरण एवं स्वभाव वाले व्यक्तियों के प्रति मध्यस्थ (उदासीन) भाव धारण करे!

समाचार विविधा

जैन विद्या संगोष्ठी-

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के देवी अहिल्या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य शोध केन्द्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा ३१ मार्च एवं १ अप्रैल, २००४ को आयोजित द्विदिवसीय जैन विद्या संगोष्ठी में ४ सत्रों में १४ शोधपत्रों का वाचन हुआ तथा ५१ विद्वान सम्मिलित हुए।

छतरपुर एक्सटेंशन में जिनमंदिर का शिलान्यास-

राजधानी नई दिल्ली की छतरपुर एक्सटेंशन कालोनी में २४ अप्रैल, २००४ को श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर का भव्य शिलान्यास हुआ।

'पं. अर्जुन लाल सेठी' पुस्तक का लोकार्पण-

२८ जून को जयपुर में उपराष्ट्रपति श्री भैंरोसिंह शेखावत ने पत्रकार श्री मिलाप चंद डंडिया द्वारा लिखित और राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा' ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तक 'पं. अर्जुन लाल सेठी' का लोकार्पण किया।

प्रथम जैन स्वर्ण मंदिर का लोकार्पण-

फालना (राजस्थान) में शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिनालय के रजत जयन्ती महोत्सव पर उपराष्ट्रपति श्री भैंरोसिंह शेखावत ने श्वेताम्बर समाज द्वारा निर्मित प्रथम जैन स्वर्ण मन्दिर का लोकार्पण किया। मंदिर के शिखरों पर ६० किलो सोने का लेप जैन महिलाओं द्वारा दिये गये स्वर्णदान से किया गया बताया जाता है।

भगवान महावीर जन्म प्रकरण पर विद्वद् संगोष्ठी-

'समन्वय वाणी', जयपुर (जून प्रथम पक्ष २००४) में श्री आनंदवर्द्धन जैन ने सूचित किया है कि दिनांक २७, २८ व २९ नवम्बर, २००४ को कुंडपुर (वैशाली) में भगवान महावीर की जन्मभूमि के प्रकरण पर देश-विदेश के सभी विद्वानों और बुद्धिजीवियों की संगोष्ठी आयोजित की जा रही है।

आचार्य भिक्षु पर डाक टिकट

३० जून को डाक विभाग, भारत सरकार, ने आचार्य भिक्षु के स्वर्गारोहण की द्विशताब्दी पर पाँच रुपये मूल्य का एक विशेष डाक टिकट जारी किया जिस पर आचार्य भिक्षु का चित्र अंकित है।

अभिनन्दन

समिति के शोध पुस्तकालय का उपयोग करने वाली शोध छात्रा **कु. नीलम जैन, लखनऊ,** को उनके शोध-प्रबन्ध **'वेदव्यास एवं जिनसेन कृत हरिवंश पुराणों का तुलनात्मक अध्ययन'** पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

ब्र. धर्मेन्द्र शास्त्री को उनके शोध-प्रबन्ध **'तिलोयपण्णत्ति का सांस्कृतिक मूल्यांकन'** पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर ने विद्यावाचस्पति उपाधि प्रदान की।

कु. संगीता जैन को उनके शोध-प्रबन्ध **'मध्य प्रदेश में इंदिरा आवास योजना का क्रियान्वयन एवं उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन'** पर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल इकाई सांगानेर एयरपोर्ट जयपुर में कार्यरत सब-इन्सपेक्टर **सुश्री दीपा जैन** को उनके शोध-प्रबंध **'वोट ऑफ कान्फीडेन्स इन पार्लियामेन्टरी डेमोक्रेसी : कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ इण्डिया एण्ड फ्रांस'** पर महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय अजमेर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

समाजसेवी **श्री दीपचंद भाई गार्डी, मुम्बई** को सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, शैक्षणिक और चिकित्सकीय क्षेत्र में सेवाएं हेतु सौराष्ट्र विश्वविद्यालय ने डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने (१) **डॉ. प्रद्युम्न कुमार जैन, रुद्रपुर** को उनकी प्रकाशित पुस्तक 'Jaina and Hindu Logic' पर वर्ष २०००, (२) **डॉ. संगीता मेहता,** इन्दौर को उनके अप्रकाशित शोध-प्रबंध **'जैन संस्कृति साहित्य के आलोक में वर्द्धमान महावीर-एक अध्ययन'** पर वर्ष २००१ तथा (३) **डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद** को उनकी प्रकाशित कृति **'जीवन क्या है'** पर वर्ष २००३ का पुरस्कार ३१ मार्च को प्रदान किया और ६ अप्रैल को महावीर जी में डॉ. प्रद्युम्न कुमार को उनकी उक्त कृति हेतु जैन विद्या संस्थान जयपुर का **महावीर पुरस्कार** २००३ भी प्रदान किया गया तथा **डॉ. जिनेन्द्र जैन, कटनी** को उनकी कृति **'जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन'** पर उक्त संस्थान का **ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** प्रदान किया गया। साथ ही **प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर** को उनकी कृति **'कवि विबुध श्रीधरकृत सुकुमाल सामिचरिउ'** पर २००३ का **स्वयंभू पुरस्कार** प्रदान किया गया।

अभिनन्दन किया गया। **शोधादर्श**-५२ में पृष्ठ ७५ पर उल्लिखित **श्रीमती सरयू दफ्तरी** एवं **डॉ. कुमारपाल देसाई** और उपर्युक्त डॉ. सुनीता जैन के अतिरिक्त राजस्थानी जैन कवि **श्री कन्हैयालाल सेठिया (कोलकाता)** और **डॉ. कोमल कोठारी** को भी इस वर्ष **'पद्मश्री'** से अलंकृत किया गया।

१० अप्रैल को लखनऊ में हिन्दी और उर्दू के पन्द्रहवें साहित्यिक सम्मेलन में राज्यपाल ने नोएडा के हिन्दी साहित्यकार **श्री प्रदीप जैन 'अंकुश'** को अन्य के साथ **'साहित्य शिरोमणि सम्मान'** से सम्मानित किया।

२ अप्रैल को नई दिल्ली में **डॉ. सत्यनारायण जटिया,** तत्कालीन केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्री, को अ.भा. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का **'आत्म आनन्द पुरस्कार २००३'** प्रदान किया गया।

डॉ. नीलम जैन, सम्पादिका जैन महिलादर्श, को यूरोप की साहित्य सृजन संस्था द्वारा विद्वत्संगोष्ठी में **'भारत-गरिमा'** अलंकरण प्रदान किया गया।

४ अप्रैल को फिरोजाबाद में **डॉ. उदयचन्द जैन** को श्री श्यामसुन्दर लाल शास्त्री श्रुत प्रभावना न्यास द्वारा आयोजित छठवा **महाकवि रइधू पुरस्कार** प्रदान किया गया तथा उन्हें **'प्राकृत विद्या-वाचस्पति'** की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया।

२५ अप्रैल को दिल्ली में **अहिंसा इन्टरनेशनल** द्वारा (१.) **प्रो. लक्ष्मीचंद जैन** (जबलपुर) को **डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार**, (२) **श्री अशोक कुमार डी. बागमार (कर्णाटक)** को **शाकाहार एवं जीव रक्षा प्रचार पुरस्कार** तथा (३) **डॉ. शेखरचन्द जैन (अहमदाबाद)** को **प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

पूर्व केन्द्रीय मंत्री **डॉ. सत्य नारायण जटिया** अभी आठवीं बार लोकसभा चुनाव में विजयी हुए। इस बार लोकसभा में निर्वाचित वह एकमात्र जैन सांसद हैं।

राजस्थान में **श्री गुलाबचंद कटारिया** को गृहमंत्री तथा **श्री प्रतापसिंह सिंघवी** को स्वायत्तशासन राज्यमंत्री बनाया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

१६ मार्च, २००४ को बेलगांव (कर्णाटक) में दिगम्बराचार्य **सुबलसागरजी** महाराज का समाधिमरण हो गया।

३० मई को दिल्ली में ऋषभदेव प्रतिष्ठान के महासचिव **श्री हृदयराज जैन** का निधन हो गया।

इस बीच कानपुर में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के आजीवन सदस्य, प्रमुख समाजसेवी, धर्मनिष्ठ श्रावक वयोवृद्ध **श्री इन्द्रजीत जैन,** एडवोकेट का भी स्वर्गवास हो गया।

उपर्युक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिरशांति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है, और शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

पुस्तकालय प्रकोष्ठ शिक्षा विभाग, उ.प्र., द्वारा वर्ष २००३-०४ में राजाराम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता की परियोजना के अन्तर्गत पुस्तक अनुदान के रुप में रु. २४,६६७/- मूल्य की ३८० पुस्तकें तथा एक स्टील का बुक केस शोध पुस्तकालय को प्रदान किया गया।

डॉ. एस. के. जैन, सुपुत्र श्री चन्द्र कुमार जैन वैद्य, नया गाँव, माडल हाउस, लखनऊ ने **शोध पुस्तकालय** हेतु रु. २,०००/- भेंट किये।

श्रीमती राजदुलारी जैन एवं श्री नेमीचंद जैन, ११३/४ स्वरूपनगर, कानपुर ने अपने पौत्र-पौत्री के जन्मदिन के उपलक्ष्य में **शोधादर्श** को रु. ५००/- भेंट किये।

श्री सुमेरचन्द जैन, १५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर ने **शोधादर्श** को रु. १,०००/- भेंट किये।

डॉ. शशिकांत-श्री रमाकांत जैन ने अपने पूज्य पिताजी की पुण्यतिथि पर **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

श्री अजित प्रसाद जैन, महामंत्री, ती. म. स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ने दिनांक २१.७.०४ को अपने कनिष्ठ पुत्र प्रिय मणि कान्त की चतुर्थ पुण्यतिथि पर उसकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १०१/- प्रदान किये।

पाठकों के पत्र

शोधादश की सभी सामग्री सारपूर्ण व खोजपूर्ण होती है। आपके लेख अत्यन्त विवेकपूर्ण तथा प्रासंगिक हैं।

- डॉ. साहू रमेशचंद्र, प्रबंध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-३

शोधादर्श वास्तव में बहुमूल्य है। इसमें सम्पादकीय तथा अन्य सभी लेख बहुत ही शोधपूर्ण होते हैं। बहुत सी शंकाओं का स्वयं ही समाधान हो जाता है। मैं तो इस पत्रिका को स्वाध्याय रूप में पढ़ता हूँ, बहुत ही उपयोगी है। पत्रिका हेतु रु. १०००/- भेज रहा हूँ। **- श्री सुमेरचन्द जैन, मुजफ्फरनगर**

शोधादर्श-५२ बेहद सारगर्भित एवं प्रेरक आलेखों से भरा पड़ा है। डॉ. शशिकांत का आलेख 'अरिहंत या अरहंत' तथा न्यायमूर्ति एम.एल. जैन का 'सूत्र से मंत्र' आलेख चिन्तन के लिये बाध्य करता है। आदरणीय अजित प्रसाद जी का सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' सामयिक है एवं गंभीर टिप्पणी है। निर्वाण लाडू एवं महासभा का प्रस्ताव (समाचार विमर्श में) बेहद चिन्तनीय है। श्री भूतोड़िया का जर्मन विदुषी पर आलेख भी जैन समाज के मुँह पर करारा तमाचा है। कब तक हम मात्र यूँ ही लेखनी चलाते रहेंगे? क्या है इन सबका निराकरण, विचारणीय है।

- डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता

शोधादर्श-५२ मिला। प्रियवर रमाकान्त का प्रयास स्तुत्य है।

- डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

शोधादर्श-५२ मिला। अंक सुन्दर पठनीय सामग्री संजोये है। श्री रमाकान्त द्वारा वर्णित नाथूराम प्रेमी जी की साहित्य सेवा प्रशंसनीय है। सम्पादकीय विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। क्षणिकाएं, 'चिंतन एक अनुभूति' आदि रचनाएं प्रेरणास्पद हैं। 'अरहंत', 'परमेष्ठी नमस्कार मंत्र', जर्मन विदुषी सम्बन्धी आलेख ध्यातव्य हैं। पुस्तक समीक्षा, समाचार आदि सामग्री भी सदैव की भांति उत्तम है।

- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श-५२ मिला। पत्रिका के ८६ पृष्ठों पर मूल्यवान सामग्री सजी हुई मिली, विशेषकर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन, डॉ. शिवप्रसाद, श्री मांगीलाल भूतोड़िया, श्री रमाकान्त, डॉ. शशिकांत, डॉ. शैलबाला आदि के पन्नों ने अधिक ध्यान खींचा। आपके 'अक्षर-यज्ञ' से शांति और समाधान के सूत्र अवश्य निकलेंगे।

- श्री सुरेश जैन सरल, जबलपुर

शोधादर्श-५२ में 'गुरुगुण-कीर्तनः श्री नाथूराम प्रेमी' लेख हेतु बधाई! ज्ञान-यज्ञ को समर्पित ऐसे तपस्वियों का स्मरण समय-समय पर कराते रहना आवश्यक है, अन्यथा अगली पीढ़ी उनसे अपरिचित रह जायेगी। रमाकान्त जी ने प्रेमी जी के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को समेटकर उनका समग्र रूप प्रस्तुत किया है, उन्हें साधुवाद।

डॉ. शशिकांत ने 'अरिहंत या अरहंत' लेख में रोचक विषय उठाया है। उनके अनुसार 'अरिहंत' में भाव-हिंसा का बोध निहित है। यह तर्क सम्मत है। जैन धर्म की दृष्टि सकारात्मक है, इसी कारण उसमें निषेध की अपेक्षा विधि पर अधिक बल है। अर्ह् धातु (पूजा करना या योग्य होना) से व्युत्पन्न अर्हत् शब्द भारतीय समाज में व्यापक रूप से प्रचलित रहा जिसके कारण बौद्धों ने भी इसी अर्थ में उसे स्वीकार किया। और फिर सबसे प्राचीन हाथीगुम्फा अभिलेख में भी 'अरहंत' शब्द का ही प्रयोग है।

डॉ. शैलबाला शर्मा के लेख 'शाकाहार : महत्व एवं उपयोगिता' के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि हमारे देश में दो सम्प्रदाय या धर्म- जैन और भागवत (वैष्णव) ऐसे हैं जिनमें अहिंसा का अत्यधिक महत्व है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, आचरण में, व्यवहार में उसे उतारने पर बल दिया गया है। तीर्थंकर नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई कृष्ण वासुदेव, दोनों का सम्बन्ध ब्रज भूमि, जहाँ पशु ही धन रहा, से था। अतः संभावना है कि शाकाहार ब्रजभूमि की देन है। अभी १००-५० वर्ष पूर्व तक वहाँ रहने वाली सभी जातियों में शाकाहार ही प्रचलित था, कायस्थ भी मांस नहीं खाते थे। आज भी उन्हीं क्षेत्रों या परिवारों में शाकाहार प्रचलित है, जिनमें जैन अथवा वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव है। डॉ. शर्मा इस विषय पर अपनी शोध में इन तथ्यों पर भी विचार कर लें।

- डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी, ५३, खुर्शेदबाग, लखनऊ-२२६००४

शोधादर्श-५२ चटपटी सामग्री के साथ सत्य का दर्पण लिये मिला। सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' में समयानुकूल आपने बहुत कुछ लिख दिया है। जैन पत्रकारिता को आज जिस क्षितिज पर सिंहासनारूढ़ होना चाहिये, वह दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहा है। आज इस क्षेत्र में जो कलम चल रही है उसमें प्रायः कहीं न कहीं स्वार्थ और अहं की बू नज़र आती है। 'समाचार विमर्श' 'दूध का दूध और पानी का पानी, उक्ति को चरितार्थ करता है। इस उम्र में भी आपकी इतनी कठोर लेखनी की साहसिकता को दाद देनी होगी।

जैन गुफाएं तथा गुहा मंदिर और अरिहंत या अरहंत लेख भी रुचिकर लगे। अन्य सामग्री भी पठनीय एवं मननीय है।

- पं. सुनील जैन 'संचय', जैनदर्शनाचार्य, नरवां (सागर)

शोधादर्श-५२ में जर्मन विदुषी डॉ. शार्लोटे क्राउजे की व्यथा पढ़कर मार्मिक पीड़ा हुई। उनकी मृत आत्मा को सादर नमन और क्षमायाचना भी। ऐसा कृतघ्नी समाज सम्भवतः ही कोई और हो। यहाँ सभी की यही दशा है। अवसरवादी मात्र समाज को धर्म के नाम पर लूट कर सुख भोग रहा है। समाज किसी आदर्श सूत्र से बंधा होता है, कुछ मर्यादाएं भी होती है। हमारे आदर्श निरर्थक हैं।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श अच्छा निकल रहा है। मार्च में पृष्ठ ७२ पर प्रकाशित समाचार श्री सम्मेदशिखर जी पर्वत पर तीर्थयात्रियों के लिए नई-सुविधाएं, के सम्बन्ध में यह सूचनार्थ है कि उसमें उल्लिखित निर्माण जैन श्वेताम्बर सोसायटी, जो तीर्थ की व्यवस्था करती है, ने कराया है।

- श्री वीरेन्द्र सिंह लोढ़ा, सम्पादक श्वेताम्बर जैन, आगरा

शोधादर्श-५२ में श्री रमाकान्त का लेख 'श्री नाथूराम प्रेमी' बड़ा ही प्रेरणादायक है। इस महापुरुष को आपने स्मरण किया यह एक बड़ी अच्छी बात है वर्ना हिन्दी साहित्य के अनेक पुरोधाओं का नाम तो अब लुप्तप्राय हो गया है।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई से हिन्दी में प्रकाशित श्री शरत चन्द्र चटर्जी के उपन्यास 'देवदास' तथा 'बड़ी दीदी' सर्वप्रथम मैंने १९३५ में खरीदे थे। श्री नाथूराम प्रेमी पर लिखे गये लेख ने अनेक स्मृतियों को ताजा कर दिया।

-श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस'
३७२, राजेन्द्रनगर, लखनऊ

शोधादर्श-५२ में श्री नाथूराम प्रेमी के विषय में पढ़कर प्रसन्नता हुई। जैन जगत के विद्वानों की जानकारी से ज्ञानवर्द्धन होता है। जर्मन विदुषी के साथ व्यवहार के विषय में ज्ञात कर दुःख हुआ। स्वास्थ्य चर्चा का स्तम्भ भी लाभदायक है। पूरा अंक ही ज्ञानवर्धक है।

-श्रीमती राजदुलारी जैन, कानपुर

शोधादर्श का ५२वां अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के क्रांतिकारी स्वरूप को देखते हुये यह विश्वास हो रहा है कि जैन समाज में घुस आई बुराइयों, आडम्बरों और

गलत प्रथाओं को समाप्त करने की दिशा में इस पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा। श्रद्धेय डाक्टर साहब के पुराने लेख 'जैन गुफाएं तथा गुहा मंदिर' को पुनः प्रकाशित कर शोधार्थियों का उपकार किया है। 'अरिहंत या अरहंत', 'शाकाहार : महत्व एवं उपयोगिता' तथा णमोकार मंत्र पर लेख काफी स्तरीय हैं। जैन पत्रकारिता पर सम्पादकीय हर बुद्धिजीवी की आँखें खोलने का कार्य करेगा।

-डॉ. विनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा

शोधादर्श-५२ अपने विशेष ढंग का निराला पत्र के रूप में ग्रन्थ है।

- श्री मूलचंद जैन, हरदा

शोधादर्श-५० तथा ५१ की सामग्री बहुशः पठनीय है तथा समग्र चिन्तन को केन्द्रित करती हुई प्रभावक बन गई है। पण्डित प्रवर चैनसुखदास जी व पं. कैलाशचंद जी पर रमाकान्त जी के सार्थक लेख नव साहित्यकारों-लेखकों के लिये प्रेरणादायी हैं। पाकिस्तान के जैन मंदिरों पर तथ्यपरक लेख आकर्षक है। समाचार विमर्श तथ्यपरक है और हमें अपना दायित्व बोध कराता है। सचमुच **शोधादर्श** का प्रत्येक अंक जिनवाणी, जनवाणी तथा जैनवाणी (जैन समाज के क्रियाकलापों की मुखर सूचक) का सोद्देश्य-सार्थक जागरूक मंच सा प्रतीत होता है।

- श्री मोतीलाल 'विजय' एवं श्रीमती विमला जैन, कटनी

शोधादर्श हमेशा की तरह संग्रहणीय है तथा नये कलेवर में और आकर्षक है। आपकी निर्भीक वाणी इसे धार प्रदान करती है और संपादनकला निखारती है।

-इंजी. नीलम कांत जैन, दिल्ली

शोधादर्श-५१ में श्री सनतकुमार जैन का लेख 'जैन जातियां', तत्पश्चात **शोधादश**-५२ में उनकी टिप्पणी उपरोक्त लेख के समर्थन में तथा तत्संबंधित सम्पादकीय टीप भी पढ़ी। श्री सनतकुमार जी ने अपने लेख में लिखा है कि बुंदेलखंड की परवार, गोलालारे, गोलापूर्व, गोल सिंघारे जातियां अग्रवाल जाति से ही निकली हैं। यह निष्कर्ष उन्होंने किन साक्ष्यों के आधार पर लिखा है, स्पष्ट नहीं किया है।

परवार जैन बुंदेलखंड में बहुतायत से हैं और उनके पूर्वज राजपूत थे जो कि राजस्थान, गुजरात के तत्कालीन क्षेत्र से कालांतर में मध्यवर्तीय इलाके बुंदेलखंड में बस गये थे। परवारों में बांझल, कांसल, बीबी कुट्टम, भारिल्ल, वात्सल, गोईल्ल, इत्यादि गोत्र हैं और किसी गोत्र की समानता अग्रवालों के किसी गोत्र से निकालकर यह निष्कर्ष निकालना कि परवार और अन्य समाज अग्रवाल थे, सिर्फ व्यक्तिगत भ्रांति की पुष्टि ही कर सकती है, सत्य की नहीं।

श्री नाथूराम प्रेमी, जो परवार जैन थे, ने 'परवारों का इतिहास' या 'परवार जैन जाति का इतिहास' पुस्तक लिखी है जिसमें परवारों के इतिहास का विशद विवरण है। यह पुस्तक 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर', हीरा बाग, सी. पी. टैंक, मुम्बई से प्राप्त की जा सकती है।

- पं. छक्कीलाल जैन शास्त्री, दिल्ली

आपके लेख अभिप्राय सांप्रदायिकता से अलिप्त एवं ॲडवर्टाइस तथा थानूर/माधूर बातों से अलिप्त, वाचना-चिंतन आचरण योग्य विचारणीय, स्पृहनीय, कटिल/जटिल शब्द प्रयोग एवं भगवान महापुरुष आदि चित्रों से अलिप्त- आज के युग में बहुत ही अलिप्त- पढ़कर साधर्मी स्वाध्यायी भाई बहनों को पढ़ने के अुपयोग लाता हूँ। ऐसा ही हरदम स्टैंडर्ड रखें यही मनीषा-सद्भावना।

- श्री कांतिलाल जैन, कोपरगांव

शोधादर्श-५२ कई दृष्टियों से चिंतनीय लगा। जर्मन विदुषी डॉ. शार्लोटे की व्यथा-कथा पढ़कर ऐसी पीड़ा हुई कि आँसू भी सूख गये। सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की रक्षा के गीत गाने वाला, प्रतिदिन आलोचना-पाठ करने वाला 'सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदम्' क्लिष्टेषु जीवों के प्रति दया दर्शाने वाला, खान-पान में खास वस्तुओं के उपयोग में सावधान रहने वाला, अहिंसा को परम धर्म कहने वाला यह जैन समाज कितने निम्न और निंद्य स्तर तक गिर सकता है, उसका ज्वलन्त उदाहरण शार्लोटे की कथा है।

इस अंक में णमोकार मंत्र, अरहंत आदि शब्दों की व्याख्या, परिभाषा पर काफी चिन्तनप्रद सामग्री है। विद्वत् समाज के लिए यह चर्चा मीठी खुजली पैदा कर सकती है, पर सोचता हूँ कि आम समाज के व्यवहार पर, हमारे दैनंदिन आचरण पर ऐसी चर्चाओं का कितना प्रभाव पड़ता है? क्या हमारी नैतिकता इससे परिशुद्ध होती है? जब मैं **समणसुत्तं** के कार्य में जुटा था तब डॉ. नेमीचंद जी शास्त्री आरा वालों ने कहा था कि शब्द अरहन्त ही सही है और वही रखना।

पं. नाथूराम प्रेमी को आपने याद किया, यह सुखद है। उन्होंने तो नये और अबोध लेखकों को भी खूब प्रोत्साहित किया था।

आदरणीय अजितप्रसाद जी का सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' हमारे पत्रकारों के लिए दिशाबोधक है।

शाकाहार की उपयोगिता का अपना महत्व है, पर क्या अहिंसा यहीं तक सीमित है। शाकाहार करने से तो हमारी नैतिकता, मानवता, प्रामाणिकता, सरलता, सादगी का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए। पर अब तो भय लगता है कि किस पर विश्वास किया जाय।

शोधादर्श की टिप्पणियां तो सचोट और मार्गदर्शक होती हैं।

- श्री जमनालाल जैन, सारनाथ

शोधादर्श का ५२वां अंक मिला। आपका प्रत्येक अंक विचारोत्तेजक रहता है तथा दिगम्बर जैन समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात करता है। पुष्पदंत जी इस महानगर में सब कुछ वही कर रहे हैं जो एक वैदिक पंडित कर्मकांडी करते हैं। मुझे तो लगता है कि जैसे दक्षिण में स्थित पार्श्वनाथ की प्रतिमा तिरुपति बाला जी बन गई है वैसे ही भविष्य में सभी बीसपंथी आम्नाय के मंदिर इन मठाधीशों के कारण हिन्दू मंदिर बन जायेंगे। और शुद्ध दिगम्बर धर्म भी लुप्त हो जायेगा। गुरुगुण कीर्तन में श्री नाथूराम प्रेमी पर आपका लेख प्रशंसनीय है।

पत्रिका के मुख पृष्ठ पर भगवान के या आचार्यों के चित्र मुद्रित करना क्या उचित है ? क्योंकि कुछ समय बाद पत्रिकाएं स्थानाभाव के कारण रद्दी में बिक जाती हैं। उन कागजों का दुरूपयोग होता है। इस पर कुछ लिखें। आपको कुरान शरीफ कभी भी रद्दी की दुकानों पर बिकते नहीं मिलेगी। यहाँ तक कि जहाँ उनके धार्मिक पत्र, झंडे मुद्रित होते हैं वहां जो छपते समय खराब हो जाते हैं वे उन कागजों को भी सम्हालकर रखकर योग्य स्थान पर सिरा देते है।। हमें उनसे ये बातें सीखना चाहियें।

- श्री देवेन्द्र जैन, मुंबई

शोधादर्श यथानाम, मिला अंक इक्यावन।
विषय वस्तु बहुमूल्य है, लागत परम लुभावन।।
लेख एक से एक, सभी हैं ज्ञान प्रदायी।
पाठक के भी पत्र, किसी से कम नहीं भायी।।
सम्पादक की टिप्पणी, महावीर की वाणी।
कर्म-पंथ निर्वाण, जैन कथा कल्याणी।।

- डॉ. राम सजीवन शुक्ल, जालौन

शोधादर्श-५२ में मनीषी प्रवर पं. नाथूराम प्रेमी का गुणानुवाद श्लाघनीय उपक्रम है, 'जैन गुफाएं तथा गुहा मंदिर' को पुनः संयोजित कर जैन पुरा सम्पदा के भूले बिसरे प्रसंगों का पुनः स्मरण कराया जाना अभिनंदनीय है।

सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' में वर्तमान यथार्थ को उजागर किया गया है। ऐसी टीप आज विरल है।

डॉ. शशिकांत जी का 'अरिहंत या अरहंत,' जस्टिस एम. एल. जैन का 'एसो पंच णमोयारो,' श्री अजित प्रसाद जी का चिन्तन कण 'परमेष्ठी नमस्कार मंत्र' **शोधादर्श** के इस अंक के प्राणतत्व हैं।

शोधादर्श ५१ में 'जैन जातियां' लेख पर आपका सम्पादकीय लेख के परिमार्जन हेतु दिशा-निर्देशक है।

- डॉ. भागचंद जैन 'भागेन्दु', दमोह

शोधादर्श-५२ आद्योपान्त पढ़ा। लगा यह णमोकार महामंत्र विशेषांक ही हो। क्योंकि जस्टिस एम. एल. जैन का लेख 'अरिहंत या अरहंत', 'सामान्य केवली और अर्हन्तपद : एक समीक्षा' तथा 'परमेष्ठी नमस्कार मंत्र' ये सभी लेख णमोकार महामंत्र से ही संबद्ध हैं, बहुत अच्छा लगा।

आपका सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' यथार्थ चिन्तन पर आधारित है। भट्टारक पद पर मुनिराजों को अलंकृत कर स्थापित करना वास्तव में मुनिपद का घोर अपमान है।

- श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

शोधादर्श-५२ मिला। पूरा पढ़ा। आपने सदैव की भांति बड़ी स्पष्ट बातें लिखी हैं। सत्य कडुवा होता है। पठनीय सामग्री है सभी।

- महावीर प्रसाद जैन सर्राफ
(दिल्ली वाले) पांडिचेरी प्रवास से

शोधादर्श निरन्तर मिल रहा है। उसका प्रत्येक अंक अंक नव जागरण हेतु गुदगुदी पैदा करता है। यही इसकी तटस्थता का प्रमाण है। सच तो गरिष्ठ होता ही है।

- डॉ. ऋषभचन्द्र जैन
वैशाली (बिहार)

शोधादर्श-५२ में डॉ. शाश कान्त का लेख 'अरिहंत या अरहंत' पढ़ा। उनका सम्यक्ज्ञान और उसके प्रयोग का साहस सराहनीय है। 'अरिहन्ताणं' शब्द में हिंसा साक्षात् है, किन्तु 'अरि' जब मोहनीय कर्म है तो उसके नाश करने पर जिनेन्द्र संज्ञा प्राप्त करना ही जैन धर्म का मुख्य तत्त्व है तो 'अरिहन्ताणं' से भावहिंसा होनी तो नहीं चाहिये। तथापि जब एक alternative बढ़िया शब्द 'अर्ह' है तो अपने लिये मूलमन्त्र में 'अर्हन्ताणं' निर्विवाद रूप से शोभनीय है

- श्री सुखमालचन्द्र जैन, नई दिल्ली

शोधादर्श- ५२ में णमोकार मंत्र पर चार लेख छापकर चिन्तन-मंथन के द्वार खोले हैं, देखते हैं कैसा स्वागत होता है। डॉ. शशिकांत ने इस ओर ध्यान खींचा है कि बिना मूलग्रंथ को देखे वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों व भागवत आदि के प्रमाण दिये जाने की प्रवृति कई जगह देखने में आई है। पृष्ठ ३६ पर साध्वी विजय श्री 'आर्या' ने जो श्लोक उद्धृत किया है वह आचार्य हेमचन्द्र का है और इस प्रकार है -

"भव बीजांकुर जननाः रागाद्याः क्षयं यान्ति यस्य।
ब्रह्मा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै नमस्तस्मै।।"

जर्मन विदुषी डॉ. शार्लोटे क्राउजे के बारे में जानकारी देकर श्री भूतोड़िया ने जैन समाज की आँखें खोलने का समयानुकूल काम किया है।

भाई रमाकान्त की लेखमाला तो वैसी ही है जैसी **जैन जागरण के अग्रदूत** में श्री गोयलीय की रही। श्री नाथूराम 'प्रेमी' के बारे में सबसे पहले सन् १९३८-४० के आसपास ही पता चला था जब 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' से छपे शरदबाबू के उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद पढ़ा था। उनके जैसे व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश डालना एक बड़ा योगदान है।

- जस्टिस एम. एल. जैन, जयपुर

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

□□□